

कोहानिमूया न सुहं लहंति,  
 मानसिजो सोयपरा हवंति ।  
 मायाविजो हुंति परस्त पेसा,  
 बुद्धा महिच्छा नरयं उविति ॥ ३ ॥

कोपी कभी नहीं मुग पाता,  
 मानसी रहना शोक - निमग्न ।  
 कपटी होती दाम जगत के,  
 बुद्ध महेच्छा नरक - निमग्न ॥ ३ ॥

कोरो किमं कि ? अमयं अहिमा,  
 मानो अमी कि ? हिमपपमाओ ।  
 माया भय कि ? ॥ ४ ॥

किमं वरा ? कोर, अनिय ? अहिमा,  
 अय, अमी है ? मान ।  
 तिक, तिकी, अममा है,  
 माया भय भी मान ॥ ४ ॥

# अनुक्रम

## विषय

१. जीवन की परख
२. सोभी होने अर्थ-परायण
३. होने मूढ़ नर काम-परायण
४. बुध्जन होते दान्ति-परायण
५. धर्म नियन्त्रित अर्थ और काम
६. पण्डित रहने विरोध में दूर
७. सञ्जन होने समय-पारणी
८. सञ्जनों का मिद्वान्तनिष्ठ जीवन
९. साधु-जीवन : समतायोगी
१०. छत्तवान् होते दुश्धर्मी
११. बान्धव से जो विपदा में साथी
१२. त्रोग्रहीजन मुख नहीं पाते
१३. अभिमानी पछताते रहते
१४. कपटी होते पर के दास
१५. पाते नरक सुख-लाभची
१६. जोध से बड़बड़ विप नहीं
१७. अहिता : अमृत की सरिता
१८. शत्रु बढ़ा है अभिमान
१९. अप्रमाद : हितैषी मित्र
२०. माया भव की शान



## जीवन की परख

बन्धुओ !

आज मैं आपके सामने मानव जीवन की परख के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा करने का विचार लेकर आया हूँ। हमारी यह चर्चा काफी लम्बी होगी और कई दिनों तक चलेगी। मैं एक प्राचीन ग्रन्थ के आधार पर इसकी चर्चा आपके समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भारतीय सभ्यता और धर्म के बहु-मूल्य रत्न भरे पड़े हैं। उनमें जीवन को अनुभव तथा विवेक बुद्धि से समृद्ध एवं प्रभावित करने की अपूर्व क्षमता है। चाहिए उन रत्नों को ढूँढ़ने और परखने वाला।

**गीतमकुलक : एक परिचय**

इस सशिष्य और सारगर्भित ग्रन्थ का नाम है—गीतमकुलक। 'गीतमकुलक' नाम के पीछे क्या रहस्य छिपा है? इसे पूर्ण-रूप में तो जानी महापुरुष ही बना सकते हैं। मैं अपनी अल्प मति में इसका तात्पर्य जहाँ तक समझ पाया हूँ, वह यह है कि गीतम नाम के महर्षि द्वारा रचित कुलक 'गीतमकुलक' है। जैसा कि इस ग्रन्थ पर दानिकवार कहते हैं—

‘यद् गीतम ऋषिणा प्रोक्तं गीतमं कुलकं चरम् ।

तस्य विस्तारतः कुर्वे वातिकं लोकमावया ॥’

—जो श्री गीतमऋषि ने ध्येष्ट गीतम-कुलक नामक ग्रन्थ कहा है, उस पर मैं लोक-भाषा में विस्तार से दानिक रच रहा हूँ।

इस ग्रन्थ के रचयिता श्री गीतमऋषि हैं, यह तो इस ग्रन्थ के नाम पर से स्पष्ट है। परन्तु श्री गीतमऋषि कौन थे? उनका जन्म, दीक्षा, विवरण कहाँ हुआ था? उन्होंने किता हेतु में और कब इस ग्रन्थ को लिखा है या धर्ममन्त्र में योगदानों के समझ कहा है? यह अज्ञान है। इतिहास दग विषय में मौन है। परन्तु ये गीतम-ऋषि धर्ममन्त्रवान् महावीर के पट्टशिष्य गणेश्वर श्री दम्भूनि गीतम नहीं हो सकते, क्योंकि उनके समय में जैनमुनियों में किसी भी ग्रन्थ को लिखित करने की



प्रकार कुल को अपने उपदेशों की धरोहर में, यह अ सम्भव नहीं है। अतः 'गौतम कुलक' का अर्थ हुआ—'महर्षि गौतम का श्रमण संस्कृति-भूलक कुल के लिए उस कुल के आचार-व्यवहार एवं नीति-रीति के सम्बन्ध में दिया गया उपदेश।"

### कुल के संस्कारों एवं स्मरण का दूरगामी प्रभाव

गौतम-कुलक में कुल शब्द जोड़ने के पीछे एक बहुत बड़ा रहस्य यह भी हो सकता कि कुल की स्मृति में बहुत बड़ा चमत्कार है। कुलीन व्यक्ति अपने शिष्ट कुल की मर्यादा में रहता है। वह अपने कुल की परम्परा को, अगर वह देश, काल और पात्र की दृष्टि से हितकर हो तो कदापि छोड़ता नहीं। कुल के सस्कार जबर्दस्त होते हैं। आज तो लोग कुल के संस्कारों में प्रायः बंछित रह जाते हैं। वेषभूषण से उन्हें विदेशी वेषभूषण, भाषा और रहन-सहन से अभ्यस्त किया जाता है। उन्हें अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों में पढ़ने भेजा जाता है। इससे वे शूटेड-कूटेड हो जाते और अपनी देशी पोशाक, भाषा और रहन-सहन को भूल जाते हैं। उन्हें अपनी मातृभाषा में कोई काम लगाव या रुचि नहीं रहती और न ही वे पढ़ना चाहते हैं। कुल के शुद्ध सस्कार भी धीरे-धीरे उन लडके-लडकियों में सुप्त हो जाते हैं। परन्तु जिसमें कुल के शुद्ध सस्कार होने हैं, वह मनुष्य विदेश जाने पर भी और वहाँ की भाषा बोलने पर भी अपनी देशी वेषभूषण एवं भाषा को नहीं छोड़ता, और न ही कुल के सस्कारों को छोड़ता है।

महात्मा गांधी जब विदेश जाने का विचार करने लगे, तब जाति के पक्षों ने आपत्ति उठाई कि वहाँ जाने पर कुल के सस्कार सुरक्षित नहीं रहने, अतः विदेश नहीं जा सकते। इस पर महात्मा गांधी की माँ पुनर्जीवार्दे ने कहा—'विदेश जाने में यदि कुल के संस्कारों की ही क्षति है तो इसका उपाय तो मैं कर दूँगी, मैं अपने पुत्र को तीन बागों की बटोर प्रतिज्ञा दिनाकर ही बिलायत भेजूँगी, फिर तो जानि को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।' फलतः गांधीजी की माँ उन्हें जैनमुनि श्री बेबरजी स्वामी के पास ले गई और उनसे प्राप्ति की—मेरा बेटा विदेश जा रहा है, अतः हमें तीन प्रतिज्ञाएँ देना दीजिए—(१) शराब न पीना, (२) मानाहार न करना और (३) परस्त्री-सेवन न करना।' बेबरजी स्वामी ने महात्मा गांधी को तीन प्रतिज्ञाएँ देना दीं। भाताजी ने गांधीजी से कहा—'बेटा! अब तुम पृथ्वी में विनाशित जा सकते हो। अब मुझे अपने कुल के संस्कारों की सुरक्षा का पूरा भरोसा हो गया है।' और मधुसूदन महात्मा गांधी विदेश में इन तीनों प्रतिज्ञाओं की अनेक बार हुई परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए। वे विदेश में भी अपनी भारतीय वेषभूषण में रहे।

वास्तव में कुल के आचार-विचारों की सुरक्षा के लिए नियमबद्धता की आवश्यकता है, वैसे कुल की स्मृति की भी आवश्यकता है। कुल की स्मृति में इतिनी कति है इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जाये।



अगम्यन कुल में जन्मे हुए जो सपं होने हैं, वे यमन किये हुए विष को पुनः (जीवन्त) वदादि ग्रहण करना नहीं चाहते; किन्तु हे अगम्यवासी मुने ! तुम्हें धिक्कार है, कि तुम अगम्य जीवन जीने के लिए यमन किये हुए काम-भोगों का पुनः आस्वादन करना चाहते हो। इससे तो तुम्हारा मरण अच्छा है। तुम्हें मानूम है कि मैं भोजराज के कुल की हूँ और तुम अंधक विष्णु के कुल के हो ! हम दोनों ही पवित्र उच्च कुल के हैं। क्या हम अपने कुल के पवित्र आचार-विचार को छोड़ देंगे ? हम कुलमर्यादा छोड़कर उस गन्धन कुल के सपं जैसे नहीं बनेंगे। मुनिवर ! अपने कुल का और उसके पवित्र उच्च आचार-विचार का स्मरण करो, और शान्त होकर पुनः अपने सपम में विचरण करो।"

किन्ती तोषता से सती राजीमती ने रपनेमि को पवित्र कुल की स्मृति दिलाई है ? परिणाम यह हुआ कि रपनेमि एकदम शान्त और सपम में स्थिर हो गए।

कुल के सम्भार मनुष्य में कहाँ तक काम करते हैं, इसके लिए महाभारत को उठाकर देखिये। जब पाँचों पाण्डव वनवास भोग रहे थे, उस समय एकदिन द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा—आपसे एक बात का समाधान चाहती हूँ, जब दुष्ट दुर्योधन को गन्धर्व ने कैद कर लिया था, तब आपने उसे छुड़ाने के लिए भीम और अर्जुन को क्यों भेजा था ?" इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा—“देवि ! मैं जिस कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, उसी कुल के मनुष्य को, जिस वन में रहता हूँ, उसी वन में मार जाता जाय, यह मैं बंसे देव सज्जता हूँ ? तुम पीछे भाई हो, लेकिन कुल के सम्भार तो मुझमें पहले से ही विद्यमान है। हम और कौरव आपस में भने ही सज्जते, मगर हमारे कुल का भाई हमारे के हाथ से मार साय, और हम चुपचाप बैठे देखते रहे, यह नहीं हो सज्जता।"

सच है, कुल के उत्तम सम्भारों का क्या हुआ बीजारोपण मनुष्य को मत्त काम करने से रोक्ता है, किन्तु अच्छे कार्य करने से रोक्ता नहीं बल्कि अधि-बाधित प्रोत्साहन देता है। कुल के उत्तम सम्भार पाया हुआ व्यक्ति विपत्ति आने पर भी कुलमर्यादा का त्याग नहीं करता। कदाचित् कुल-धर्मपालन और बाह्य मर्यादा दोनों में विरोध हो तो वह कुल-धर्मपालन बरके लाचारी से हुए बाह्य मर्यादा भंग का प्रावृत्ति लेकर अपने धर्म में स्थिर रहता है।

महाभारत का ही एक प्रसंग है। पाण्डवों के राज्य में एक बार कुछ घोर बिभी की गोर्गें चुरा कर ले जाने लगे। वह गृह्य अर्जुन के पास शिकायत लेकर आया कि “हमारी गायों की रक्षा कीजिए, घोर गायें चुरा कर ले जा रहे हैं।” द्रौपदी पाँचों भादवों की पत्नी थी। उससे विवाह करने समय पाण्डवों ने यह नियम बना लिया था कि जिस भाई की बारी होगी, उस समय द्रौपदी के गृह में दूसरा नहीं जा सकेगा। अगर भूलवश जाएगा तो उसे बारह बरस का वनवास का दण्ड





लिए किस प्रकार के जीवन स्वाय्य हैं, किस प्रकार का जीवन ग्राह्य है ? एकान्त अर्थ और एकान्त काम से युक्त जीवन कितना विषम और दुःखद होता है तथा धर्ममय जीवन कितना शान्त, सुखद और गरम होता है ? बुनाचार की दृष्टि से जीवन निर्माण के लिए प्रोधादि चार बपाय, सप्तबुद्ध्यसन, द्विमा आदि पाप, तथा कृपणता, दीनता, आदि अधर्म स्वाय्य हैं, और क्षमा, नम्रता, सरलता और संनोप तथा अहिंसा आदि धर्म, उदारता सहानुभूति आदि नैतिक गुण आदि उपादेय हैं। विवेकी जीवन और मूर्ख जीवन, धार्मिक-जीवन पापी-जीवन, इत्यादि अनेकविध जीवनो को परखने के लिए भौतमबुद्धि में सुन्दर मार्ग निर्देश किया है। इसी प्रकार इसमें साधु जीवन और सद्गृहस्थ जीवन दोनों की विशेषताएँ भी बता दी हैं। गृहस्थ के लिए अपनी वर्तमान स्थिति में साधु-जीवन जैय तथा साधु के लिए गृहस्थ-जीवन हेय हैं। बुद्धि मिनाकर भौतमबुद्धि में अनेकविध जीवनो को परखने का विवेक दे दिया है। पाश्चात्य विज्ञान मिलिप्स बुद्धि के शब्दों में—

"Be such a man and live such a life that if every man were such as you, and every life a life like yours, this earth would be God's paradise."

ऐसे आदमी बनो और ऐसा जीवन जीओ, कि अगर प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे जैसा हो और तुम्हारे जीवन जैसा ही प्रत्येक व्यक्ति का जीवन हो, जगत् में कि यह धरती परमदिव्य स्वर्ग बने।" भौतमबुद्धि इसी प्रकार का जीवन-सन्देश देता है कि तुम्हारा जीवन 'मयं निबं सुन्दरम्' से ओत-प्रोत हो कि उसका अनुसरण करके हर व्यक्ति इस समार में स्वर्ग का निर्माण कर सके।

### जीवन-विद्या - सर्वविद्याओं का मूल

किसी व्यक्ति को मोटर मिल जाना कोई बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात तो है, उसे चलाने, सम्भालने और बिगड़ जाने पर सुधारने की कुशलता प्राप्त करना। अगर यह व्यक्ति मोटर चलाना नहीं जानता है तो या तो यह मोटर को उलटी-सीधी चलाकर उसकी मशीन तोड़ देगा, या बड़ी बड़ दुर्घटनाग्रस्त करके अपने ही हाथ पैर आदि तोड़ देगा। इसके विपरीत यदि उसे मोटर चलाना, सम्भालना या सुधारना आता है, किन्तु उसके पास किसी मोटर नहीं है, तो भी वह झाड़वर या मित्रों का घधा करके अपना सुधार चला सक्ता है।

मानव जीवन भी एक बटूमय मोटर के समान है। इसकी विशेषता यह है कि इस जीवनरूपी मोटर को चलाने के लिए दूसरे किसी झाड़वर को रखने में काम नहीं चलता, इसे चलाने के लिए तो स्वयं झाड़वर बनना पड़ता है। सर्वप्रथम इस जीवन रूपी गाड़ी की भव्य-भक्ति परखने की जरूरत है कि यह गाड़ी बड़ी टूटी पड़ी सराब या बिगड़ी हुई तो नहीं है कि रास्ते में ही छोटा दे दे ? यह जीवन गाड़ी ऐसी



## जीवन एक : दृष्टि बिन्दु भिन्न-भिन्न

मनुष्य का जीवन सबसे उत्कृष्ट जीवन है, परमात्मा के निकट पहुँचाने वाला, तथा आत्मा को अत्यन्त विगुद बनाकर स्वर्ग सिद्ध, बुद्ध भुक्त बन जाने वाला जीवन है। भगवान् महावीर द्वारा निर्दिष्ट 'एगे माया' के दृष्टिकोण से सारे ससार का जीवन एक समान आत्मा को लेकर चल रहा है। परन्तु देखने का, समझने का, एवं परस्पर के दृष्टिबिन्दु भिन्न-भिन्न होने से व्यक्ति जीवन को ठीक तरह से समझ नहीं पाता। मैं आपको इसे एक दृष्टान्त द्वारा समझाता हूँ—

एक धनिक ने शहर से बाहर एक मकान इस विचार से बनवाया कि बाहर सुखी व शुद्ध हवा मिलेगी, सबका स्वास्थ्य ठीक रहेगा। एक दिन उस मकान के पाम से एक चोर गुहरा। उसने सोचा कि चोरी करने वाले समय यह मकान मेरे लिए अच्छा आश्रम बनेगा। साथ ही इसमें चोरी करने में भी आसानी रहेगी, क्योंकि यह राँव के बाहर एकान्त में बना हुआ है। यह भी चोर की भावना। दूसरे दिन वहाँ से एक जुआरी निकला। उसने सोचा—“जुआ खेलने के लिए यह बिल्कुल एकान्त स्थान है। पुलिस आदि को यहाँ आने का अवसर नहीं मिलेगा।” तीसरे दिन एक परस्त्रीपामि सम्पत्त वहाँ से होकर जा रहा था। उसने इन मकान को देखकर सोचा—“आनन्द भोग करने के लिए यह बहुत ही उपयुक्त स्थान है।” इसके पश्चात् एक दिन एक भगवान् का भक्त वहाँ से गुहरा। उसने मकान को देखा तो क्षणभर टहर कर विचार करने लगा—“ध्यान में बैठने और भगवद्भजन करने के लिए यह अच्छा एकान्त स्थान है। यहाँ बैठकर ध्यान, भजन करने में मन भी सुख सहेगा। किसी प्रकार का बीनाह्न न होने के कारण चित्त की एकाग्रता व सन्मयता में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।”

मकान एक है, परन्तु दृष्टि और भावना भिन्न-भिन्न प्रकार की है। इसीलिए विभिन्न भावना वाले अपने-अपने दृष्टिबिन्दु और विचार से मकान को देखते हैं। आँखों में फर्क नहीं है, आँखें तो उस मकान की रचना को, जैसा वह बना है, उसी रूप में ही देखती हैं। मकान की आकृति, बाह्य ढाँचा, सम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, रंग-रंगो-रंग सब को एक मरीची ही दिगाई देती है, परन्तु फर्क है—उस मकान के उपयोग एवं मकान के दायरे उद्देश्य को देखने और सोचने के दृष्टिकोण में। इसी प्रकार मनुष्य का जीवन शरीर के बाह्य ढाँचे, अंगों-पों की रचना, यथास्थान अवयवों की व्यवस्था, विभिन्न इन्द्रियों से कार्य करने की क्षमता आदि स्पष्ट दृष्टि से प्रायः एक-सी दिगाई देती है, परन्तु मानव जीवन का जो आन्तरिक रूप है, उसका जो उद्देश्य है या जो उपयोग सम्भव है, उसे देखने-जरागने और सोचने के दृष्टिकोण में फर्क है। और यही फर्क मनुष्य-जीवन का सही मूल्यांकन करने में सहायक बालता है।



मानव जीवन के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। आप भी अपने जीवन के सम्राट हैं। आर आत्मा हैं। आत्मा की मघाट को यह सारा दायित्व मिना है। आपकी मेवा के लिए मन, बुद्धि, हृदय, इन्द्रियाँ, हाथ-पैर आदि अंगोपांग मिले हैं। परन्तु आप अपने जीवन का साम्राज्य पाकर भी उसका सवालन न कर सकें, उम जीवन को समझें नहीं, उसका उपयोग कैसे किया जाए, इसे भली-भाँति जाने नहीं, मन, बुद्धि आदि जो सेवक आपकी मेवा में तैनात हैं, उनसे डरने-डरते रहें, वे आपकी खिल्ली उड़ायें, आपकी बात मानें नहीं, आप मन को अध्ययन मनन, ध्यान, जप में लगाना चाहते हैं, लेकिन वह लगता नहीं, इन्द्रियों को आप अपनी सेवा में लगाना चाहते हैं, लेकिन वे भी आपकी बात सुनी-अनसुनी करके विषयो की ओर दौड़ने लगती हैं, ऐसी स्थिति में माना बनाइये आपकी दशा भी उस भित्तारी राजा की-भी-नहीं हो रही है? भित्तारी राजा भी सबसे डरता-कांपता था, क्योंकि उसमें भित्तारीवृत्ति गई नहीं थी, राजा पद पर पहुँचने के बाद भी वह अपने जीवन की उच्चता को समझा नहीं था। उसका उपयोग भी भलीभाँति जानता न था। इसलिए उसके जीवन में राजा का जीवन पाने का कोई आनन्द नहीं था, बल्कि दुःख था। इसीप्रकार आप भी अगर इन मन, शरीर, इन्द्रिय आदि से दबते-डरते हैं, वे आपकी बात नहीं मानते हैं तो समझना चाहिए कि आप भी अपनी पूर्वजीवन की गुलामी वृत्ति को नहीं छोड़ सके हैं। ऐसी स्थिति में कहना पड़ेगा कि आप जीवन के वास्तविक सम्राट नहीं हैं।

गहराई से विचार करने पर पता चलता है कि जो अपने आपको भूल जाता है, अपने आपको भलीभाँति जानना-परखना नहीं है, उसे दुनिया भी कुछ नहीं समझती। वह जब अपने जीवन का अर्थ, रहस्य, उपयोग आदि भली-भाँति समझ लेता है, तब कोई कारण नहीं कि शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि उसकी अवगणना करें, उसकी आज्ञा का उत्तमपन करें या उसे गुलाम बनायें।

अज्ञानी की तरह बुनियादारी में फँसकर मत जीओ

परन्तु हम देवदुर्लभ मानव-जीवन का इतना सुन्दर मूल्यांकन किये जाने और उसके दायित्व उपयोग के सम्बन्ध में मार्गदर्शन दिये जाने पर भी मनुष्य जब अर्थ-परायण, कामपरायण, धर्मपरायण, कर्मापरायण, ध्यानपरायण, विषयपरायण आदि विभिन्न स्तर के जीवनो को अपनी आँखों से इस दुनिया में देखता है तो वह थकावट में पड़ जाता है, कुछ भी निष्कर्ष नहीं कर सकता कि इनमें से कौन-सा जीवन प्रशस्त है? कौन-सा जीवन जीने में यहाँ भी सुखशान्ति मिलेगी और अपने जन्म में भी। तथा मोक्ष के मरुत की ओर से जाने वाला जीवन कौन-सा है? क्योंकि इन सभी जीवन जीने वालों में बाहर से तो कोई कम, कोई ज्यादा सुखी नजर आता है। इसीलिए गौतमबुद्ध ने इन विविध प्रकार के जीवन जीने वाली की परत दे दी है। परन्तु हमको नजर-अन्दा कर देने का परिणाम यह होता है कि मनुष्य-जीवन पाकर भी



बुलबुल-जीवन, और वानर-जीवन, इन चार विभागों में विभक्त होकर अज्ञानी मनुष्य अपना जीवन समाप्त कर देता है।

एक साधना निष्ठ कवि ने इसी प्रश्न को उठाया है—

यह दुनिया है, यहाँ जीवन बिताना किससे आता है ?  
हजारों जन्म लेने हैं बनाना किससे आता है ?  
कमाने के लिए सारे लूब ही बौड़ करते हैं ।  
सुन्ही कहूँ सही, धन का कमाना किससे आता है ?  
सगाने हैं मधुर प्रीति, क्षणिक दो चार रोजों की ।  
मगर सबको भुलवत का सगाना किससे आता है ?

इसीलिए सेंट्येप्यु ने निगा है—जीवन का द्वार तो सीधा है, पर मार्ग संकीर्ण है।”

जीवन, एक यात्रा पाथेय की आवश्यकता

मनुष्य का जीवन क्या है ? इस सम्बन्ध में एक पाश्चात्य विचारक ने कहा है—

“Life is a journey, not a home ' a road, not a city of habitation, and the enjoyments and blessings we have are but little inns on the roadside of life, where we may be refreshed for a moment, that we may with new strength press on to the end ”

“जीवन एक यात्रा है वह बोर्ड पर नहीं, सड़क नहीं, और न ही बसने के लिए नगर है। और इस जीवन यात्रा में जो आनंद-प्रमोद और देन हम पाते हैं, वे तो जीवन की छोटी-छोटी पथरशाताएँ हैं, जो सड़क की बाजू में पड़ती हैं, जहाँ हम क्षण भर मुस्का कर ताजगी लेते हैं, न कि सरोताज होकर हम फिर से नई शक्ति और शक्ति के साथ अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर आगे बढ़ सकें।”

बिना सुन्दर विचार है, जीवन का समझने के लिए। परन्तु हमारी जीवन-यात्रा काफी समझी है, उसे सज्ज करने के लिए पाथेय की आवश्यकता रहती है। बिना पाथेय के यात्रा करने वाला पवित्र रास्तों में भूल-भ्रम से घबरा जाता है, वैसे ही जीवन यात्री भी रास्ते में मुश्किलों और मुसम्माहों का पाथेय लेकर न चले तो उसे परेशानी उठानी पड़ सकती है, वह भटक भी सकता है, इधर-उधर। उत्तरा-ध्मपन गुरु भी दल बान का गाथी है—

अद्वय जो महं नु अपाहेओ पवजई ।

गच्छंतो सो कुही होइ छुहानहाए पीडिओ ॥ १६/१६ ॥

जो साधनापथिक जीवन की इस समझी यात्रा में बहुत समझे महान् मार्ग पर बिना पाथेय के चलता है, वह रास्ते में ही भूल-भ्रम में पीड़ित होकर दुखी हो जाता है।





## लोभी होते अर्थपरायण

धर्मप्रेमी मनुष्यो ! यदि मैं आपके सामने गौनमनुलक की पृष्ठभूमि और उस ग्रन्थ में जीवन की परम के बारे में कह गया था। गौनमनुलक में जीवन की परम के लिए पढ़ना शुरू दिया है—

‘सुद्धा नरा अर्थपरा हवन्ति’

लोभी नर अर्थपरायण होते हैं। इसका आशय यह है कि लोभी व्यक्तियों का जीवन सदा अर्थ के पीछे लगा रहता है।

इस संसार में अनेक प्रकृति के मानव होते हैं। कोई लोभी होता है तो कोई सन्तोषी, कोई कृपण होता है तो कोई उदार, और कोई निषट स्वार्थी होता है तो कोई परमार्थी। इन विभिन्न जीवनों में से आपको अपने लिए चुनाव करना है कि आपके लिए कौन-सा जीवन उपादेय है? तथा इनमें से कौन-सा जीवन स्वास्थ और कौन-सा ज्ञेय है? इसे भी परखना है। यह भली-भाँति समझना है कि लोभी जीवन हेतु क्यों है और लोभी प्रकृति के लोग इसे उपादेय समझकर क्यों अपनाए हुए हैं?

लोभी मानव की तीन मनोवृत्तियाँ

लोभी जीवन संसार में सबसे निहृष्ट जीवन होता है। लोभप्रस्त मानव की सदा तीन परिणाम धाराएँ होती हैं, जो इस प्रथम मूल में ‘अर्थपरा हवन्ति’ से स्पष्ट भूषित कर दी हैं। सबप्रथम उसकी परिणामधारा होती है—घन की रट, दूसरी होती है—संसार के पदार्थों के मग्न करने की रट, और तीसरी होती है—स्वार्थ परायणता। आपने देखा होगा कि लोभी व्यक्ति में प्रायः ये तीनों बुमनोवृत्तियाँ पायी जाती हैं—वह घन के पीछे सोचना बना रहता है, मग्न के मग्न पदार्थों को जुटाने में लगर रहता है और सदा अपने स्वार्थ को साधने की ताक में रहता है। इनोमिए लोभी मनुष्यों की अपेक्षा कहा है। अर्थ शब्द में ये तीनों ही अर्थ निहित हैं।

लोभी जीवन घन की रटन

लोभी मनुष्य में घन की अत्यधिक भूष होती है। घन की बुराबोध में उसकी आँखें इनकी बुद्धिवा जाती हैं कि वह परिवार, समाज या राष्ट्र में जो निधन होने, उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता, चाहे उनमें अन्य गुण हों। उनके



घन जब मनुष्य के मन-मस्तिष्क पर सवार हो जाता है तो घन पर आश्रित्य जमाने के बजाय घन उस पर आश्रित्य जमा लेता है। आप जानते हैं कि घोड़ा, रथ, बार, रिक्शा आदि सवारियों पर सवार होकर मनुष्य आराम से आने-गमने स्थान पर पहुँच जाता है, परन्तु ये ही सवारियों अगर मनुष्य के मिर पर सवार हो जाय तो बड़ी हास्यास्पद और विविध स्थिति हो जाती है, उग मनुष्य की। सम्भव है, वह दुर्घटनाग्रस्त हो जाय या उसके हाथ-पैर टूट जायें अथवा जान पर ही आये। यही हाल उन सोभी मनुष्यों का हो जाता है, जिनके मन-मस्तिष्क पर घन सवार रहता है।

एक ठेकेदार माह्व थे। बहुत बड़ी ठेकेदारी का काम था उनका। उनके मन-मस्तिष्क पर हरदम अधिक लाभ के ठेके की घुन सवार रहती थी। घन उन पर इतना अधिक हावी हो चुका था कि बाज-बाज में उनके भूँह में वे ही ठेकेदारों सम्बन्धी लाभ के शब्द निकल पड़ते थे, चाहे बाजचीन का विषय पारिवारिक या सामाजिक हो क्यों न हो।

उनका एक पुत्र था, जो विवाहयोग्य हो चुका था। अनेक कन्या बाने अपनी-अपनी कन्या में उनके पुत्र की समझ के लिए आने लगे। ठेकेदार माह्व के परिवार के लोग, मित्र एवं सम्बन्धी भी लड़के का सम्बन्ध तय कर लेने पर जोर देने रहते थे, परन्तु ठेकेदार माह्व घन की टोह में रहते थे, इस कारण एक या दूसरे बहाने में टालते रहते थे। एक दिन वे अपने मित्रों के बीच बैठे थे कि सबने पुत्र का सम्बन्ध करने के लिए उन पर दबाव डाला और पूछा—“आगिर आर अपने लड़के का सम्बन्ध क्यों नहीं करते हैं, जबकि इनने लड़की वाले बार-बार आपके द्वार पर आने हैं? आगिर क्या दृष्टा है आपकी?” ठेकेदार माह्व महमा बोन उठे—“भाई! पुत्र का विवाह तो करना ही है। जिनका टेंडर ऊँचा होगा, उमी के साथ सम्बन्ध कर दूँगे।” यह सुनते ही मित्रों के मुख में हँसी का फव्वारा छूटा। ठेकेदार माह्व को भी अपनी भूल मायम हुई, वे गरुडम और गण और भूल मुद्रासे हँस बोलें—“अबसोम! भरे भूँह में घन की से टेंडर ज़रूर निकल गया। वास्तव में मेरा अभिप्राय था—अच्छा कुल, उच्च परिवार और उच्च आचार-विचार।” लेकिन अब क्या होगा? उन्हें हास्य का पात्र तो बनना ही पड़ा। बम्बुन ठेकेदारों के मन-मस्तिष्क पर करना व्यवसाय और घन का लाभ गूँगी गरुड में छान हुन था। इसीलिए विवाह सम्बन्ध की बात में भी पर्याप्त घन लाभ का गुपक व्यवसायिक ‘टेंडर’ शब्द उनके मुख से निकल गया था।

हाँ, तो मैं कहना था कि सोभी मनुष्य घन के मोह में इनने पागल हो जाते हैं कि घन के सिवाय समार में उन्हें कुछ शिखा ही नहीं। रात-दिन घन ही घन उनके हृदय में बना रहता है। वह लोदरी का टिकट गरीब बर एक ही रात में



हजारों कुंवारी सड़कियाँ, सधवाएँ एवं विधवाएँ वेश्यावृत्ति अगीकार करके अपने शरीर को बेच देती हैं, अपने धर्म को छोड़ देती हैं। भोजप्रबन्ध में स्पष्ट कहा है—

मातरं पितरं पुत्रं, भ्रातरं वा सुहृत्तमम् ।  
सोभाविष्टो नरो हन्ति, स्वामिनं वा सहोदरम् ।

सोभाविष्ट मनुष्य अपने पिता, माता, पुत्र, भाई, मित्र, स्वामी एवं सहोदर को भी (धन के लिए) मार डालता है।

धन के लोभ में मनुष्य अपने स्वार्थ में भी नहीं देगता, और न ही अपने प्राणों की परवाह करता है। वह धन का लाल हो तो मरने के लिए तैयार हो जाता है। उनका जीवनमूल होता है—चमड़ी जाय, पर दमड़ी न जाय। वह केवल धन संचय करने में ही रहता है, उसको भर्च करना उसे नहीं सुहाता। वह तो भरी हुई तिजोरी देखकर ही प्रसन्न होता है।

एक सेठजी थे। रोगों से वे बीमार पड़ गए। अपने पिता के इलाज के लिए पुत्र शहर के एक नामी और विद्वत् डॉक्टर को से आए। डॉक्टर को घर आए देग सेठजी के हाँस गुम हो गए। वे सोचने लगे—‘यह तो बहुत भारी रोग में उतार देगा।’ अब वे चुप न रह सके, पूछ बैठे—‘डॉक्टर साहब! मेरी बीमारी के इलाज में बिना राखी खर्च होगा?’

डॉक्टर ने हिमाच सगाकर बनाया—‘सेठजी! मेरी फीस, दवाइयों और खर्चों में कुल बिना कर लगभग ६०० रुपये तो खर्च हो ही जाएंगे।’ यह सुनते ही सेठजी ने अपने पुत्र को पास बुला कर धीरे से उनके कान में कहा—‘बताओ तो, मेरे अन्तिमंशकार पर बिना खर्च हो जाएगा?’ एक पुत्र ने बनाया—‘१५० रुपये।’

सेठ ने तयार में कह दिया—‘तो खम मुझे मर ही जाने दो। इलाज की कोई जरूरत नहीं। ४५० रुपये तो बचेंगे।’

सेठ का रवैया देखकर डॉक्टर की हिम्मत फीस भाँगे की न हुई। उगने धुरधुर अपना बैग उठाया और वहाँ से चल दिया।

ऐसी हीनी है, सुगन्ध की अपेक्षा। वह मर जाना मजूर करता है, परन्तु पैसा खर्च करना नहीं। वह मरने-मरने भी कुटिलता करता है। धनसुब्धक रात-दिन इसी रीतिध्यान में रहता है कि बिना धन, कैसे प्राण बचें?

दोनों भर्तृहरि जगत् में एक मृग के नीचे बैठे थे कि सहसा उनकी दृष्टि कुछ दूर पड़े एक चमकते हीरे पर पड़ी। उन्होंने अपने मन की गमगाथा आरम्भ बिना। कुछ ही देर बाद दो अन्वित्र मित्र उधर में निकले। दोनों की दृष्टि एक साथ उस हीरे पर पड़ी। दोनों उसे लेने के लिए झगड़े। दोनों की लम्बाई ज्ञान में बाहर आ गई। भर्तृहरि ने दोनों को गमगाने की बहुत बौद्धिक की मंजिन लोप और जोध



चार दिन बाद ही जब सोने के मिश्रकों के बरतने उन्हें किसी तरह का सामान नहीं मिला तो वे भूखे मरने लगे । अखिर मजबूर होकर दोनों फिर खलीका के न्यायालय में उपस्थित हुए और सारी सम्पत्ति दी और उनके चरणों में प्रार्थना की—“मैंने सोम के बशीभूत होकर किसी भी तरह धन पाने की कोशिश में बड़े-बड़े अनर्थ किये । अब आप इस धन को शहर की जनता में बँटवा दें ।” दोनों को यह प्रतीति हो गई कि “धन दबाकर रखने में नहीं, उसका सदुपयोग करने से ही सुख मिलता है ।”

मयमुच खोरी की जेब धनलिप्ता में है । खोरी के अपराध में पकड़े गये युवक ने जजमाहब ने पूछा—तुमने खोरी क्यों की ? उसने कहा—“क्या बताऊँ, मुझे रातो-रात सम्पत्ति बनने की धुन सवार हुई । आने प्रयत्न में, सफल भी हो गया था, लेकिन बम्बलन सिपाही मुझे पकड़ लाए । मेरे समूचे धरे ही रह गये ।”

इस उत्तर से सोभी की मनोवृत्ति का स्पष्ट परिचय हो जाता है ।

### धनलोभ सत्य विनाशक

इतना ही नहीं, धन का लोभ सत्य का खात्मा कर देता है । केवल एक शिवार और समाज या राष्ट्र ही नहीं, मारे ममार में लोभ या लोभी असत्य, धोखे-माजी, छलकपट, अन्याय आदि अनर्थों का मूल बना हुआ है । बड़े-बड़े राष्ट्र धन के लोभ में आकर बूटनोटिक चानें खनते हैं, बड़े-बड़े पद्मन्व रचते हैं । हम में एक प्रसिद्ध कहावत है—

When money speaks, the truth is silent."

‘जब धन बोलने लगता है, तब सत्य को चुप होना पड़ता है ।’ वास्तव में धनलोभ सत्य और प्राणिकता का शत्रु है ।

### परस्पर अविश्वास का कारण धनलोभ

धनलोभुता परस्पर अविश्वास का भी कारण बन जाती है । बड़े-बड़े कुलीन घरों में धनलोभ परस्पर अविश्वास पैदा कर देता है । अविश्वास हो जाने पर मनुष्य को मन्देह और मर्दा का रोग लग जाता है । त्रिनगे जन्मी छुटकारा पाना मुशकिल है । इसीलिए एक यदि तो धन को दूर से ही मत्ताम करता है—

अविश्वास-निघाताय महापातकहेतवे ।

विनाशुत्रविधोघाय हिरण्याय समोज्जुने ॥

हे धन ! तू अविश्वास का मजाना है महापाप का कारण है, विनाश और पुनर्जीवने का शत्रु है, अब तूझे दूर से ही मेरा लक्ष्य है ।

एक मौलवी जो न अपनी मौत के पुत्र को बिच देकर इस्मिअ मार डाला कि यह बड़ा हाँसे पर मेरे पुत्रों के हक में से हिस्सा लेगा ।





हैं, उनके मूल में भी प्रायः यही सोमवृत्ति काम करती है। इतीतिष्ठ सास्त्रकार कहते हैं—

“करोइ सोहं, वेरं बड़इ अप्पणो।”

जो धन का सोम करते हैं, वे आपस में एक दूसरे में वैर बढ़ाते हैं।

सोभी मनुष्य में अत्यधिक-स्वार्थ-परायणता

सोभी मनुष्य की दूसरी मनोवृत्ति होती है—स्वार्थपरायणता। वह अपने ही स्वार्थ में बन्द हो जाता है। सोम की बीमारी, ऐसी पात्री बीमारी है कि मनुष्य उसमें अपने में सिमरना शुरू हो जाता है। इससे वह गिरता चला जाता है। शुद्ध स्वार्थ के गवीर्ण घेरे में बन्द होकर वह बात-बात में नीचता पर उतर आता है। वह स्वार्थ के बिना बात ही नहीं करता। जहाँ अपना स्वार्थ साधना होगी, वहाँ उसकी रुचि होगी। क्योंकि उसे तो सोम का ऊपर चढ़ा रहता है। इतीतिष्ठ एक नीतिकार ने कहा है—

“भक्ते द्वेषो, जड़े प्रीति प्रवृत्तिर्गुह्यमघने।

मुले बटुकता नित्यं छतिनो उवरिणामिय ॥”

स्वार्थपरायण अतिसोभी मानव में भक्त के प्रति द्वेष, जड़ में प्रेम, गुह्यनों (बी आत्मा) का उल्लंघन करने की प्रवृत्ति और मूल में (वाणी की) बटुता उवरणत पुरणों की तरह छतिनों में भी ये बीजें प्रायः होती हैं। उवरणत को भक्त मानी भोजन में रुचि होती है, वैसे ही स्वार्थी धन सोभी को भी भक्ति करने वाले के प्रति द्वेष या जल्लि होती है, बुहार वाले को पानी की व्यास बढ़त लगती है, इतिष्ठ जल में प्रीति होती है, सोभी को जड़ धन में प्रीति होती है, चेतन धन को वह गूछना भी नहीं। बुहार वाला गुरु या गरिष्ठ भोजन का लपन करने में प्रवृत्त होता है, जबकि सोभी गुरुजनों की बात का उल्लंघन करता रहता है। बुहार वाले का मुँह बड़ा हो जाता है, सोभी का मुँह भी बचन की बटुना के कारण कड़ा रहता है। इतिष्ठ सोभी स्वार्थपरायण मानवों और उवरणत लोगों की एक-सी रसा है। स्वार्थपूर्ण जीवन गवर्ण दुःखदायी जीवन है। इसका परिणाम मरक की-सी परि-स्थितियों पैदा कर देता है। क्या घर में, क्या बाहर में, सपरं, द्वेष, ईर्ष्या, सोम, मानसा भाँड दोषों का मूल कारण स्वार्थपरायणता है। स्वाधरणा के कारण ही मनुष्य और, बेईमान, टग और धुन बनता है। स्वार्थपरायण व्यक्ति बेवग आनी ही बात सोचना है। दुनिया चाहे मरे या जीए, उसका करना स्वार्थ मयना चाहिए, यही उसकी वृत्ति रहती है।

तथागत बुद्ध की अवन्ती में विजाल गमा विगजिन हो गई थी। योड़ने योड़ धिष्टु और थैट्टी मायल्लजन जेध रह गए थे। इनमें प्रायः विचारक लोग थे और सभी अपनी-अपनी गवाओ का समाधान लयापन से बना रहे थे। सभी बड़ी राग में



हैं तो भीरे भी उने छोड़कर उड़ जाने हैं, अपने हुए वन को देखकर मुग वहाँ मे भाग जाने हैं, निर्धन पुण्य को गणिका भी छोड़ देनी है, मन्त्री लोग धीरहीन राजा को छोड़ देने हैं। सभी लोग अने-अने मन्त्र मे एक-दूसरे मे शक्ति लेने हैं। इस स्वार्थ प्रधान मगार मे वैन किनका धिय है ?

स्वार्थ भावना मे दूसरे की हानि नहीं दिगती। दो व्यापारी थे। एक था धी का व्यापारी और दूसरा था चमड़े का। वर्षाऋतु आने वाली थी। धी के व्यापारी की नीयत यह थी कि वर्षा होगी तो गायो-भैंसों को घरने को खूब मिलेगा और दूध बहुत होगा। मैं खूब पैसा कमाऊँगा। परन्तु चमड़े के व्यापारी की भावना यह थी कि वर्षा नहीं होगी तो डोर मरेंगे और उनका चमड़ा मुझे मिलेगा, जिसे बेच कर मैं मानामास हो जाऊँगा। वाइए, जिनकी छद्म स्वार्थभावना धी दोनों की। दोनों ही अपना-अपना स्वार्थ देखते थे !

सुख मनुष्य का जीवन स्वार्थपरायण हो जाना है। मगार में जितने भी सोमपरायण लोग हुए हैं, वे अतिस्वार्थ मे पड़कर अनेक अनर्थ करने देगे गये हैं। स्वार्थप्रधान संसार का मरु बिज देसिए—

स्वार्थ का है सब संसार ।

सूरीबान्ता ने निज पति को बे विषयुक्त आहार ।

स्वार्थ मिद्धि जिन देखो कंता, बर दिया अत्याचार ? स्वार्थ० ॥

कोनिक और औरंगजेब ने किया न मोख विचार ।

स्वार्थमान हो अपने विनु को दिया कंद में डार ॥ स्वार्थ० ॥

सूरीबान्ता ने राज्यलोक मे प्रेरित होकर राजा प्रदेशी को बहर मिला हुआ भोजन दे दिया था। मगार के इतिहास मे मग्राट कोनिक और बादशाह औरंगजेब पर स्वार्थभावना के कानन का टीका है। दोनों ही बाहर से धर्माला और प्रभु भक्त दिखाई देने थे, परन्तु अन्तर के अनिस्वार्थ कपो धिय ने उनका सारा ही जीवन विनाश और बदनाम बना दिया था।

यो तो प्रत्येक मनुष्य मे बाड़ा बहुत स्वार्थ होना है, परन्तु वह स्वार्थ जब अर्थाश का अनिजमन करके दूसरे के स्वाधीन को कुचन जानना है, जब वह दूसरे की हानि के आधार पर अपने स्वार्थ को मिद्ध करता है, या खुद का भी लाभ गँदाकर दूसरों की हानि पहुँचाना है, तब तो वह अनिजम प्रेरित मनुष्यार्थी कहलाता है। भ्रूंहरि ने बार कोटि के स्वाधी बताना है—

एके सभुरवा, परार्थपटका, स्वाधीन् परित्याग ये ।

सामान्यान्तु परार्थमुद्यममृतः स्वाधीविरोधेन ये ॥

तेजो मानुवराक्षसा, परहित स्वाधीय निजान्त ये ।

ये तु धननि निरर्थकं परहित ते के न जानीमहे ॥”



के लिए अपने प्राणों को भी शौक देता है। युवनवसाना में इन सम्बन्ध में एक गुप्ता दृष्टान्त मिलता है—

तलशिमनगरी के दक्षिण पश्चिम में बसे उच्च स्थान ग्राम का निवासी सोम-देव 'यथा नाम तथा गुण' वाला था। उनके पास पिता के द्वारा उर्वाश्रित किया हुआ बहुत धन था। पिता की छत्रछाया में उसका जीवन गुण से स्थिर हो रहा था। उसे किसी चीज का अभाव या कष्ट नहीं था। फिर भी उसकी सोभी वृत्ति बहुत ही बढ़ी-बढ़ी थी। उसी सोम-वृत्ति से प्रेरित होकर वह झूठ, कपट, धोखेबाजी आदि बरके लोगों से धन-बेन-प्रचारेण धन हारण करने में तत्पार रहता था। इनगित् सोम उसे धनदेव के नाम से न पुकार कर सोमदेव के नाम से पुकारते थे। इसी नाम से वह प्रसिद्ध हो गया था।

एक दिन सोमदेव ने सोमवृत्ति से प्रेरित होकर धनोपाजन हेतु अपने पिता से विदेशगमन की अनुमति मांगी। पिता ने उसे समझाया—“बेटा! करने यहाँ क्या है, जो तू विदेश बसाने के लिए जा रहा है। अपने घर में इतना धन है कि शीघ्रियों तक भी समाप्त नहीं होगा। घर में गुण में रहो, दान-पुण्य आदि शुभ-कर्म करो।”

लेकिन सोमदेव के घर पर तो सोम का भूत सवार था। इसलिए पिता की नीति कैसे मान लेता? अब उसने विदेश जाने की हठ पकड़ ली। अनिच्छा : महमत हो गए। सोमदेव सारथ लेकर विदेश यात्रा के लिए चल पड़ा। वह मोरारजपुर पहुँचा। वहाँ पिता के मित्र भद्र सेठ के यहाँ ठहरा। वहाँ व्यापार पड़ा लाभ भी हुआ। किन्तु लाभ होने के साथ गन्तोप होना तो दूर रहा, - अधिकाधिक सोम बढ़ता गया। शास्त्र में मानवमन की मूलवृत्ति का निर्देशन : है—

“जहा साहो, तहा सोहो, साहा सोहो पवइइइ”

“ज्यों ज्यों लाभ होता है, त्यों त्यों सोम होता जाता है। लाभ से सोम सतत

भी। उसके मन में और अधिक धन प्राप्ति की चाहता तो से जब उसने रत्नदीप की समृद्धि की बात सुनी तो - रत्नदीप जाने की छान ली। भद्रसेठ की भाँपे ले मान भर लिया और मार्ग के कष्टों की ल दिया।

य में बढ़ने से भी नहीं हिचकिचाया, के मारेपन से ही भर जाय।

के से बाकी धन बचाया। वहाँ से 'र' बन पड़े। सोम की माया



के लिए अपने प्राणों को भी शौंक देता है। कुवलयमाला में इस गम्भीर में एक सुन्दर दृष्टान्त मिलता है—

तप्तशिलानगरी के दक्षिण पश्चिम में बसे उच्च स्थल ग्राम का निवासी लोभ-देव 'यथा नाम तथा गुण' वाला था। उसके पास पिता के द्वारा उपाजित किया हुआ बहुत धन था। पिता की छत्रछाया में उसका जीवन सुख से व्यतीत हो रहा था। उसे किसी चीज का अभाव या कष्ट नहीं था। फिर भी उसकी लोभी वृत्ति बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी। उसी लोभ-वृत्ति से प्रेरित होकर वह झूठ, कपट, धोखेबाजी आदि करके लोगों में घेन-केन-प्रकारेण धन हर्षण करने में तत्पर रहता था। इसलिए लोग उसे धनदेव के नाम से न पुकार कर लोभदेव के नाम से पुकारते थे। इसी नाम से वह प्रसिद्ध हो गया था।

एक दिन लोभदेव ने लोभवृत्ति से प्रेरित होकर धनोपाजन हेतु अपने पिता से विदेशगमन की अनुमति माँगी। पिता ने उसे समझाया—“बेटा! अपने यहाँ क्या बर्बादी है, जो तू विदेश बर्माने के लिए जा रहा है। अपने घर में इतना धन है कि मात पीढ़ियों तक भी समाप्त नहीं होगा। घर में सुख में रहो, दान-पुण्य आदि शुभ-कार्य करते रहो।”

लेकिन लोभदेव के निर पर तो लोभ का भूत सवार था। इसलिए पिता की सखी भीस बँने मान लेता? अतः उसने विदेश जाने की हठ पकड़ ली। अनिच्छा से पिता सहमत हो गए। लोभदेव साथ लेकर विदेश यात्रा के लिए चल पड़ा। वह वहाँ में सोपारबपुर पहुँचा। वहाँ पिता के मित्र भद्र सेठ के यहाँ ठहरा। यहाँ व्यापार में अच्छा लाभ भी हुआ। किन्तु लाभ होने के साथ मन्त्रोप होना तो दूर रहा, उल्टे अधिकाधिक लोभ बढ़ता गया। शास्त्र में मानवमन की मूढवृत्ति का निदर्शन दिया है—

“जहा लोहो, सहा लोहो, साहा लोहो पयड्डइ ”

‘जो ज्यों लाभ होता है, त्यो-त्यो लोभ होता जाता है। लाभ से लोभ सतत बढ़ता ही जाता है।’

यही दशा लोभदेव की थी। उसके मन में और अधिक धन प्राप्ति की चाहता जयी। सोपारबपुर के व्यापारियों में जब उसने रत्नद्वीप की समृद्धि की बात सुनी तो उसके मुँह में पानी भर आया। उसने रत्नद्वीप जाने की ठान ली। भद्रसेठ को आधे लाभ का शासीदार बनाकर बाहनों में उसने माल भर लिया और मार्ग के कष्टों की परवाह न करके वह रत्नद्वीप की ओर चल दिया।

सच है, धनलोलुप व्यक्ति समृद्ध के अथाह जन में बढ़ने में भी नहीं हिचकिचाता, चाहे वहाँ उसे कुछ भी न मिले, उसका मुँह नमक के सारेपन में ही भर जाय।

रत्नद्वीप में लोभदेव और भद्रसेठ ने व्यापार में काफी धन कमाया। वहाँ से अपने बाहन भर कर दोनों वापस सोपारबपुर की ओर चल पड़े। लोभ की साक्षात्





## अर्थलोभ आधुनिक सामाजिक बुराईयों का मूल

आज के युग में छल, प्रपंच, झूठ-फरेब, भ्रष्टाचार, बेईमानी, धोखाधड़ी, मिलावट, रिश्वतखोरी, तस्करी, चोरबाजारी आदि जितनी भी सामाजिक बुराईयाँ फैली हुई हैं, जिनके कारण हमारा राष्ट्र एवं समाज नैतिक दृष्टि से खोखला एवं दिवालिया हो रहा है, इनकी तह में जाएँ तो मात्तूम होगा कि ये सब अर्थलोभ की कारमात है। अर्थलोभ ही इन सबका जन्मदाता है। प्रामाणिकता, न्याय-नीति और सत्य व्यवहार की कमी आदि सब कुछ सोमी मनुष्यों की सुस्थकवृत्ति का ही परिणाम है। अच्छी वस्तु में बुरी वस्तु की मिलावट क्यों होती है? दूध में पानी क्यों मिलाया जाता है, मोल-नाप में म्यूनाधिकता का क्या कारण है? रिश्वत क्यों ली जाती है? इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है, वह है अधिकाधिक धनप्राप्ति की लालसा।

## सारे खुराफातों की जड़ : धनलिप्सा

गहराई से देखा जाए तो संसार में कोई भी ऐसा पाप नहीं है, जो धन के लोभ के कारण न होता हो। चोरी, लूट, टगी, ब्यभिचार, छल, बेईमानी, अन्वय, हिंसा, जुआ, आदि कोई भी ऐसी बुराई नहीं है, जो अर्थ लोभ के कारण न होनी हो। इसलिए एक कहावत महत्तर है—

“Covetry is the cause of many disastours.”

—सुग्नता अनेक विपत्तियों का कारण है।

धीमद् भागवत में इसे अनर्थों का मूल बताते हुए कहा है—

“स्तेषां हिंसाऽनृत दम्भः कामः क्रोधः स्वयमदः।

भेदो वैरमविश्वासः संस्पृष्टा व्यसनानि च ॥

एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।

तस्मादर्थमनर्थास्त्य धेयोऽर्थो दूरतस्त्यजेत् ॥

चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, स्वय, मद, भेद (फूट) वैर, अविश्वास, स्पृष्टा और व्यसन—जुआ, ब्यभिचार और शराब; ये १५ अनर्थ मनुष्यों में अर्थमूलक माने गए हैं। अतः धेयोऽर्थो पुरण अर्थनामवाले इस अनर्थ का दूर से ही स्वागत कर दे।

## धन का नशा . सबसे बड़कर

अर्परायण सोमी मनुष्य यह नहीं देखता कि दूसरे के साथ मेरे क्या सम्बन्ध है? वह अपने अर्थ के लोभ में दूसरे का अपमान करते देर नहीं लगाता। वास्तव में धन का नशा बहुत ही बड़कर है, इस बात को राजस्थान के बिहारी बबि ने भी बताया है—

जनक जनक ते सौ गुनी मारहता अधिकाय ।

का जाएँ बीरान है, या पाएँ बीरान ॥



सिद्ध करने में कौन-सा साम है ? क्या सुख है ? कौन-सा पेट भर जाता है ? वर्तमान युग का यह एक ज्वलन्त प्रश्न है, जिसका उत्तर हम अनुभवों आँखों से ढूँढना चाहिए ।

अर्थ के पीछे भाग-दौड़ करने वालों का कहना है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति आदर-सम्मान के साथ जीना चाहता है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा हो, सभी उसकी बाह्यवाही करें, उसे उच्च आसन दें, इसप्रकार की प्रवृत्ति इच्छा मनुष्य में रहती है । और इस अभिलाषा की पूर्ति के लिए अधिकाधिक धन प्राप्ति एक प्रबल साधन है । जिसके पास धन होता है, वह धन से जीवन-यापन की सभी सामग्री, सुख-सुविधाएँ खरीद सकता है, दूसरों को पैसे देकर काम करा सकता है, समाज-सम्बन्धों में पैसा देकर नाम कमा सकता है । पैसा होने पर मनुष्य को सब जगह आदर मिलता है । समाज में सर्वत्र पैसे की पूछ है । वह यही सोचता रहता है कि 'सर्वगुणाः काचन-माभ्यवन्ति'—सभी गुण स्वर्ण-धन के आश्रय में रहते हैं । ये ऊँचे-ऊँचे भवन, अट्टालिकाएँ, बगीचा, कोठी, मित, कारखाने, पार आदि सब साधन धन से प्राप्त हो सकते हैं । हीरे का हार, मणियों के आभूषण और सोने के गहने सब पैसे के सेत हैं । फिर पैसे से पैसा बढ़ता है । पैसे से नीकर-घारर आदि रखकर मनुष्य सुखोपभोग कर सकता है । ये और ऐसे ही कुछ कारण हैं, जिससे अर्थ-सोम से प्रेरित होकर मनुष्य अधिकाधिक धनोपायन एवं धनसंग्रह में लगा रहता है ।

वास्तव में देखा जाए तो अर्थ के आधार पर जो मनुष्य की उच्चता और महत्ता का मूल्यांकन किया जाता है, वह बिल्कुल गलत है । भारतवर्ष धर्म का पुजारी रहा है, वह गुणों का पूजक और प्रशंसक रहा है । यहाँ किसी को आदर-सम्मान उसके धर्म, विनय, सेवा, विद्या, विवेक, सदाचार आदि गुणों पर से दिया जाता था, न कि केवल धन का ढेर देखकर । धन तो बेश्या, कमाई, चोर, डाकू आदि के पाम भी बहुत होता है, परन्तु समाज में उनका जीवन उच्च, उत्कृष्ट एवं प्रशंसनीय नहीं माना जाता । केवल धन के मात्र से मनुष्य की उच्चता एवं महत्ता को नापना गलत है । इसी चलन पैमाने के कारण समाज में अनेक अनर्थ पैदा रहे हैं । येन केन प्रकार धन बढ़ाने के लिए अनेक हथकण्डे किए जाते हैं । यही समाज और राष्ट्र के अप-पनन का कारण है ।

अर्थव्यवस्था या धननिष्ठा के कारण जहाँ व्यक्ति रात-दिन आत-रोड ध्यान में धिरा रहता हो, वहाँ धर्मरक्षि या धर्मध्यान वहाँ रह सकता है ? जहाँ धर्म नहीं, वहाँ कौरे धन में सुख-शान्ति कैसे हो सकती है ? यही कारण है कि नीति, न्याय और धर्म के विवेक को निलज्जित देकर जहाँ धन कमाया जाता है, वहाँ कलह, बला, धर, ईर्ष्या, छीना-झपटी, बिगड़ आदि अनेक दुःख धन के साथ ही साथ लग जाते हैं और धन कोई स्थायी रहने वाला नहीं है । यह सभी शास्त्र और अनुभव एक स्वर से पुकार कर कहते हैं । फिर अधिक धन बढ़ाकर धन के पीछे बीड हास्य करने में क्या लाभ है ? क्या सुख है, जिस धन के पीछे अनेक अनर्थ और पाप मने



## होते मूढ़ नर कामपरायण

धर्मप्रेमी बन्धुभो !

पिछले सूत्र में सुखजीवन की झाकी बताई गई थी। मोभी-मानव जर्म के पीछे पड़कर अपना अमूल्य जीवन नष्ट कर देता है। आज मैं मोनमकुलक के दूसरे सूत्र (यानी प्रथम गाथा के दूसरे खरण) में दी हुई मूढ़ जीवन की झाकी प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिसमें बताया है कि किस प्रकार एकमात्र काम के पीछे पड़कर मानव अपने अमूल्य जीवन को बर्बाद कर देता है।

**काममूढ़ - जीवन की समग्र शक्ति का नाशक**

मूढ़ मनुष्य वह है, जो अपने हिताहित को नहीं समझता और मोह में पड़कर अपने जीवन की शक्तिशाली बनाने के बदले बर्बाद कर देता है। मनुष्य का शरीर एक शक्ति-उत्पादक वायनेमो की तरह है। इसमें निरय निरन्तर महत्वपूर्ण शक्तियों का उद्रेक होता रहता है। जब उन शक्तियों का अपेक्ष्य रोककर उन्हें संप्रहीन कर लिया जाता है और उचित दिशा में लगा दिया जाता है तो महान् कार्य सम्पन्न होते हैं और जब इस शक्ति-उत्पादक शरीर को विषयभोगो या कामवासनाओं के छिद्रों में नष्ट कर दिया जाता है तो मनुष्य दीन-हीन, असहाय और परावनम्बी तथा पराधीन बन जाता है। अपना शक्तिग्रन् लुटा देने के बाद मनुष्य का शरीर थोपा है, रीठा है। पाश्चात्य विचारक Channing (चेनिंग) ने ठीक ही कहा है—

“Sensuality is the grave of the soul.”

—काम भोगाशक्ति आत्मा की कब्र है।

सबभुव मानव कामशक्ति की उचित दशा में मोड़ने के बजाय, उसका विपरीत दिशा में प्रयोग करके शरीर का सर्वनाश कर लेता है। कामशक्ति का उचित दिशा में उपयोग जीवन शक्ति का एक विह्वल है। इस शक्ति को मज्जित रखकर उमका सदुपयोग करने से मनुष्य का जीवन प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण बनता है।

जिस समय राम-रावण युद्ध का प्रथम दौर शुरू हुआ, उस समय रावण ने अपने सर्वोच्च केनापति मेघनाद को ही मदसे पहने लहने भेजा। मेघनाद पर रावण



विद्वान् था, व्यापारी था, अनेक देशों में भ्रमण भी कर चुका था। अनेक घाटों का पानी पीकर ४० साल की उम्र में वह इस स्थिति पर पहुँच गया था कि अब जीवन में उसे जरा भी रस नहीं रहा। उसकी जिंदगी क्लृप्ति, कटु, मनहूस और विपाक बन गई थी। प्रकृति ने उसे अच्छा शरीर दिया था, लेकिन उसने मार-सम्भाल न करके इतनी सापरबाही से अपना जीवन बिताया कि ४० वर्ष में तो उसके बाल पफोद हो गये थे। कृडावस्था के सभी बिल्लू उसके शरीर पर दिखाई दे रहे थे। उसके अध्ययन और देशाटन से जो ज्ञान उपाजित किया था, वह जीवन में सच्चा उपयोगी नहीं हो सका। उसका मन अपने स्वार्थी विचारों में इतना तल्लीन हो गया था कि उसने क्या खाया-पिया? कौन-से विषय का उपभोग किया? कब से कौन-सा खेल खेला? इनके सिवाय दूसरा कोई विचार उसके दिमाग में घुस नहीं सकता था?"

यह है विषयभोगी स्वार्थी जीवन का नीरस चित्र। यही तो मूड जीवन है, जो बेबल विषयभोगी की ओर दौड़ लगाकर अपने उत्कृष्ट एवं बहुमूल्य देवदुर्लभ मानव-जीवन को पशु-जीवन से भी गया-बीता बना लेता है।

### कामभोगों में कितना सुख, कितना दुःख ?

कामी जीवन का एकमात्र उद्देश्य इन्द्रियविषयो में सुख की कल्पना करके उसी में डूबे रहना है। जैसे भुत्ता मुँह में हडिडियाँ चबाता है, तब उसे बहुत ही सुख महसूस होता है, वह समझता है कि हड्डी में से रस आ रहा है। परन्तु उस मूड को यह पता नहीं होता कि वह रस तो चबाने समय उसके मुँह में निकले हुए खून का ही है, हड्डी का नहीं। इसी प्रकार इन्द्रियविषयी सांसारिक कामभोगों की वृत्ति में ही सगे रहते हैं। विषयास्वादन में उन्हें आनन्द आता है जिसका आभास वास्तव में उनके शरीर के निचुड़ जाने में उन्हें होता है। ऐसे लोग रात-दिन इसी उधेड़बुन में रहते हैं कि उनके कानों में संगीत की मधुर स्वर सहृदयी पड़ें, उनके नाक में चारों ओर से मादक गुग्गुलु का ही प्रवेश हो, दुर्गन्ध का कहीं नामोनिशान न हो, उनकी जीभ गरम, स्वादिष्ट, चटपटे व्यञ्जनों का ही आस्वादन करती रहे, स्पर्शही मुन्दरियाँ उसमें निपटी रहें, उनकी आँखों के सामने निकं उत्तमोत्तम कामोत्तेजक दृश्य आने रहें। इन्हीं विषयों की वृत्ति में वह समार का मारा गुप्त मानता है। परन्तु इन्द्रिय-विषयो का अधिकाधिक उपभोग क्या उसे आनन्द दे सकता है? क्या उसे विषयों का सहवास गुप्त प्रदान कर सकता है? क्या नहीं। अगर विषय भोग में ही गुप्त होना तो दुनिया में सबसे अधिक गुप्ती विषयासक्त होते। परन्तु आज दुनिया में सबसे अधिक दुखी, अज्ञान एवं नीरस विषयभोगी कामी है। पाश्चात्य विचारक गेनेरा (Genoa) कहता है—

It sensuality were happiness  
beasts were happier than men  
at human falsity is lodged in the soul not in the flesh.





कामसेवन या कामचिन्तन से शारीरिक पक्षाघात, अशक्ति, निराशा, चिन्तावृद्धि, व्याकुलता, शकानुता आदि के अकारण पैदा हो जाने से अत्यन्त दुःखित एवं त्रस्त हो जाना पड़ा। अधिक समय कामपरायण रहने वाले ऐसे डॉक्टरों को भी बीरों की तरह 'न्युरे स्थेनिया' का रोग हो गया। 'साइकॉलॉजी एण्ड मॉरल्स' नामक पुस्तक में मनोविज्ञानवेत्ता प्रो. हेडलीन्ड ने लिखा है कि "स्वच्छन्द यौनान्तरण (कामप्रवृत्ति) का परामर्श देना व्यक्ति को विनाश के मार्ग की ओर धकेलने की विधि है।"

इसलिए विषय सेवन जीवन का स्वाभाविक पक्ष नहीं है और न वह अनिवार्य ही है। मन में वासना उभरती है किन्तु आत्माधीन व्यक्ति करने मानवत्वं एवं अन्तर्बल द्वारा उसका निग्रह कर लेता है। काम जीवन का दुर्बल पक्ष है, तथा बहुत नाशुक और मुदुर भी। अतः उसमें बचने के लिए अत्यन्त जागरूकता और सावधानी बरतना अपेक्षित होता है, प्रतिक्षण उसे अन्तर्मुखी रहना होता है। मूढ़ व्यक्ति इस बात से नहीं समझते। वे कामसेवन में आनन्द मानकर उससे अधिकाधिक प्रवृत्त होते हैं। सोचा यह होता है कि काम की प्रबल आसक्ति आत्मा को स्वभाव से विचलित बनाती है, जिसका परिणाम पाप के गर्त में अधिकाधिक डूबते जाना है।

काम का प्रचुर सेवन करके उससे सन्तुष्ट होकर छोड़ देने की बात मोचना बर भूल है, धोखा है।

विषय के सेवन से कामाग्नि अधिकाधिक उद्दीप्त होती है। जब काम के आवेग पहले बताये गये विविध रूपों में उठते हैं, तब उन्हें रोक सकना बड़ा कठिन कार्य है। काम विचार के आवेग वास्तव में उन पापल कुत्तों की तरह हैं, जो अपने को पामने बाने को ही काट खाने हैं। इन पापल कुत्तों को न पालना ही सबसे बड़ी बुद्धिमानी है। जो जितना अधिक कामविचारों को पालता है या पपोलता है वह अपने जीवन में उतना ही अधिक विपत्तीजनक होता है। वह मूढ़ है, जो मुरदुलंभ मानव जीवन को कौड़ी के भाव लुटा देता है।

पुराणों में ययाति राजा का आरूपान आता है। ययाति राजा बड़ा बुद्धिमान था। मगर वह काम का बीड़ा खा। मूढ़ हो गया, फिर भी उसकी काम सोचपता नहीं मिटी। वह बहुत ही तिग्र और उदास रहने लगा। कामाग्नि ययाति ने अनेक बुद्धिमानों से उपाय पूछा। उन्होंने एक उपाय बताया—अगर कोई आरका बुझाया वय में से और अपना जीवन आरको दे दे तो आर पुन युवा हो सके हैं। निता की श्रुति फिर अनेक रूप से कामसेवन करने लगा। उसकी बुद्धिमां क्षीण हो गयी, प पैर होते पड़ गए, फिर भी कामाग्रस्त ययाति अनृण रहा। वह बाधारांग मूढ़ शत्रुओं में अत्यन्त दुःखी हो गया—

"काम कामी सखु अर्थ पुरिते से सोयइ; बूरइ, तिणइ, सरित्तिणइ—जो अण्य एव भोगाग्र होना है, वह भोग पदार्थ का विषय या रोग होने पर या



वहाँ से मरकर वह महाबल राजा के पुरोहित का पुत्र हुआ। जवान होने ही वह अत्यन्त गायन रसिक बन गया। एक दिन नगर में दूनों की एक समीपमइली आई। राजा उनसे गीत सुन रहा था। राजा ने पुरोहित पुत्र से कहा—'तुमसे भीद आ जाए तो इनका गीत बन्द करा देना।' बाँझी ही देर में राजा की आँख लग गई, परन्तु गीतासक्त पुरोहित पुत्र ने गायन बन्द नहीं कराया। कुछ ही देर बाद राजा एकदम थोँक कर उठा, देखा तो गायन बंदस्तूर चालू है। अब राजा ने कोनापमान होकर पुरोहित पुत्र के कानों में गर्मगर्म सोचना हुआ तब इनका दिया। पुरोहित पुत्र असह्य वेदना से छटपटा कर बड़ी मरण-भरण हो गया। यह है श्वर्ग-द्वय की विषयासक्ति का नतीजा। श्रोत्रेन्द्रिय पर वर्तमान सुगंध में बड़े-बड़े शहरो में बन कारखानों, बाहनों या रेडियो वगैरह के होने वाले भयकर शोर में दबाव पड़ता है। कान के पर्दे फट जाते हैं। शब्दों से सन्तुष्टि में उत्तेजना पैदा होती है। अपशब्द शोध की, सुरीते मोहक शब्द कामराग भटकाने हैं।

रूप का आकर्षण कामासक्ति भड़काता है

विजयपुर नगर का राजा विजयम्बर, मन्त्री कुशलमति और नगर मेंठ मणोअर सीनी परम्पर मित्र थे। सीनी के एक-एक पुत्र हुआ। जब ये सीनी जवान हो गए, तब एक मन्त्री ने नगर मेंठ में कहा—'मित्र! तुम्हारे पुत्र की दृष्टि में विचार है। वह राजदरबार में आने समय रास्ते में अन्तर पुर की महिलाओं के सामने ताक-नाक कर देना है, रास्ते चकता भी गर्दन उठाकर स्त्रियों के सामने देखता है। आगे चल कर यह चारित्र्यछट हो जाएगा। अब हम ऐसा करने से रोकता।' नगर मेंठ ने आगे पुत्र की बहुत मज्जाया, पर उसने एक न मानी। अपनी कुटुंब की छोड़ना नहीं था। एक दिन मेंठ के सड़के की स्त्रियों के प्रति काप-राग दृष्टि से देखते हुए रोका और वहाँ से लपेट दिया, राजदरबार में उनका प्रवेश बन्द कर दिया। मन्त्री लोग अब उसे 'बपयादा' कहने लगे। एक दिन उसने पिता ने किसी क्लिष्ट पुत्र के साथ उसे परदेस भेजा, पर वहाँ भी वह सारे शहर में भटकना फिरता, नेत्रविकारकन हाथर हुए बावडी, गरीबर आदि पर जाकर स्त्रियों को देखता रहता। एक दिन किसी प्रामाद के पापाण पर अविन दिव्यरूप जानी पुनर्नी देखी तो मोड़कन उस घर आगम हो गया। उसकी याद में पाना पीना सब भूल गया। अब कतिपे ने वह पुनर्नी बड़ी छिटा दी और कैसी ही कल्पयणी पुनर्नी बनाकर उसे उठाकर देरे पर लाया। अब थोड़ी पुत्र कुमार उसी पुनर्नी पर आसक्त होकर देखा, उसे कहने लहनाता। एक दिन कलिया और धेय्तीपुत्र दोनों वहाँ का व्यापार मंडल कर पुनर्नी साटिन भान नगर की ओर चल पड़े। रास्ते में लुटेरों ने उन्हें लूट लिया, साथ में वह पुनर्नी भी ले गए। अब तो धेय्तीपुत्र पुनर्नी के बिदाय में शरणाग्र होकर जगम में धूमने लगा। जिरगा-जिरगा वह विजयपुर आया। वहाँ के उदात्त में राजदानी की सेवक देग बार बार उसकी ओर देखने लगा। अब राज्यपुत्र ने उसे मार डाला। मरकर वह चकता हुआ। एक दिन आग में पड़ कर वह भस्म हो गया। जो अनेक जन्मों तक भटकता रहता।



एक जैन कथा है। एक राजा को आम राने का बहुत शौक था। आम्रफलों के अधिक राने से उसे एक भयकर रोग हो गया। बहुत इलाज कराये, पर व्यर्थ; क्योंकि वह दवा के साथ-साथ आम खाकर कुपच्य करता रहता था। बचने की कोई आशा न रही। एक बार एक कुशल वैद्य आया, उसने आम न खाने की बातें रली। राजा ने स्वीकार की। वैद्य ने उपचार किया, उससे राजा स्वस्थ हो गया। वैद्य ने चैतामनी देदी कि जरा-सा भी आम खाना आपके लिए विपत्त्य है। कुछ दिन तक तो राजा ने कुपच्यसेवन नहीं किया। अतः वह स्वस्थ रहा। एक दिन वह भ्रमण करता-करता आम्रवन में पहुँच गया। वहाँ पर पके हुए पीले-पीले आम राजा ने देखे तो राने के लिए भी सलचाया। सोचा—“अब तो मैं स्वस्थ हूँ। मिला एक आम खाने से कुछ नहीं होगा।” अतः वह अपनी जीभ पर नियन्त्रण न रख सका। आम खा ही लिया। फलतः बीमारी पुनः भड़क उठी और उदरगूल के कारण राजा की सत्त्वान मृत्यु हो गई,

रोगी दशा में ही नहीं, स्वस्थ दशा में भी विभिन्न रसों-तीक्ष्ण, कड़वे, खट्टे, भीटे, बर्मेले धरधरे आदि का भी विभिन्न प्रकार का परिणाम होता है। अधिक मीठा खाना मधुमेह आदि रोगों का कारण होता है, अधिक खट्टा भी शरीर के लिए हानि कारक है, इससे एसिडिटी (अम्लता) बढ़ जाती है, जिससे हार्ड जनश्वेसर हो जाता है। बर्फ, रेफ्रिजरेटर या आइसबीम का ठन्डा पानी भी पाचन क्रिया को अत्यन्त कमजोर कर देता है। अधिक खट्टाई आँसो के लिए नुकसानदेह है। एक बानक भी आँसु खुलने आँसु। उसे बच्चे आम का अधिक शौक था। इलाज होने पर आँसु कुछ ठीक हो गई। लेकिन मोटा पाते ही आँसु बचा कर घर से निकल पड़ा। बाग में जाकर उसने बच्चा आम खा लिया। फलतः आँसो की बीमारी बड़े जोर से उभर आई। बहुतरे इलाज कराए, लेकिन आँसु बिलकुल ठीक न हो सकी। अपनी स्वाद-सोनूपता का दण्ड उसे नेत्रव्योति-बिहीन होकर चुकाना पड़ा।

आप कष्टप्रद्योत की कामसोनूपता की दायण कहानी सुन चुके हैं। इन सम्बन्ध में और अधिक कहने की आवश्यकता मैं नहीं समझता। इतना ही बहूँगा कि आप कामधोगों में आसक्त होकर अपने आपकी सूँठों की शणवा में न गिराएँ, जब भी काम धोगों के सुभाबने प्रसंग आए आप अपने अत्यन्त बचा कर बुद्धिमत्ता का परिचय दें।



वास्तव में बुद्धिमान व्यक्ति अपनी बुद्धि में हिंसाहीन एवं परिणाम का बिचार करता है तो यह स्वाभाविक है कि वह विरोधी विचार-धारा या धार्मिक क्रिया को देखकर झुकने नहीं, प्रतिकूल परिस्थितियों में पहराये नहीं, किसी व्यक्ति द्वारा विरोध, प्रहार या भागीगलीज किसे जाने पर भी शान्तभाव से सहन करे, धर्मपालन करते समय अनेक प्रकार के कष्ट या दुःख आ पड़ने पर भी धैर्य से सहन करे। किसी के प्रति कोई गलती या अपराध हो गया हो तो क्षमायाचना करे। बुद्धिमान की इन सब वृत्ति प्रवृत्तियों को देखते हुए निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि वह शान्ति-परायण होता है। शान्ति-धर्मा उसके जीवन के कण-कण में रम जाती है, उसकी श्रद्धा, वृत्ति या प्रवृत्ति स्वाभाविकरूप से शान्ति के प्रति होती है। शान्ति बुद्धिमान के जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन जाती है। वह किसी भी परिस्थिति में अपने आप से बाहर नहीं होता, न वह अपने स्वाभाविक गुणों को छोड़ती है। इसलिए गौतमकुलक में कहा गया है—'बुद्धा नरा संतिपरा हवन्ति।'

### शान्ति और धर्म का अन्योन्याध्यय सम्बन्ध

शान्ति के मुख्यतया तीन अर्थ पतित होते हैं—(१) सहिष्णुता, (२) सहन-शीलता और (३) क्षमा। धर्म तथा सहन करने के अर्थ में है। इसी में ये तीनों अर्थ सम्मिलित हैं। धर्म में शान्ति के ये तीनों अर्थ समाविष्ट होने हैं। अहिंसा धर्म है और वह विरोध या हिंसा करने में नहीं है, और शान्ति में भी विरोधी या उपकारी की बात को मुन या पड़कर उत्तेजित न होना, सहन करना, प्रहार आशय, आदि में प्रतीकार न करना होता है। इसके अनिर्दिष्ट धर्म में स्वाम, नियम, धन आदि का पालन करने में अनेक कष्ट या विघ्न आने पर उन्हें समभाव से सहता पड़ना है, धर्म से परिस्थिति का सामना करना पड़ना है संयम रखना पड़ता है, शान्ति में भी मही बात है। इसलिए धर्म के बदले शान्ति शब्द का प्रयोग कर दें तो कोई आपत्ति नहीं। धर्म में अपने हृत् अपराधों, गलतियों और भूलों के लिए दूसरों से क्षमायाचना करके आत्मबुद्धि करना आवश्यक होता है साथ ही दूसरे अपनी गलतियों पर अपराध के लिए क्षमा माँगें तो हृदय में क्षमादान करना भी जरूरी होता है, शान्ति में भी ये दोनों तत्त्व आ जाते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि शान्ति और धर्म का अन्योन्याध्यय सम्बन्ध है। शान्ति के बिना धर्म टिक नहीं सकता और धर्मपालन के बिना शान्ति जीवन में आ नहीं सकती। इसलिए महर्षि गौतम ने धर्म के सत्रिंशत् चर्चों अस्मिन्ध्या करने वाले शान्ति (गति) शब्द का प्रयोग जानबूझ कर किया है। वास्तव में शान्ति शब्द यही धर्मपुरुषार्थ का ही संज्ञक है।

### सहिष्णुता बुद्धिमान का विशिष्टगुण

शान्ति का सबसे उपयुक्त अर्थ 'सहिष्णुता' है। यह बुद्धिमान अनुपपन्न का एक विशिष्ट गुण है। पशु स्वभाव में ही अतृप्तशील होते हैं। उनमें अनेक गिहाय दूसरों के हिंसाहीन को चिल्ला या बिबंझशीलता नहीं होती। अनुपपन्न में भी अब पशुता





ईश्वर के रूप में नहीं मानना, पर वह अग्नि के रूप में तो मानना ही है। मैंने सब कुछ सहा, परन्तु तुम एक दिन भी न सह सके। उसने न तो तुम्हारा अमान किया था, न तुम्हें किसी प्रकार का दुःख दिया था। फिर तुमने उसके साथ मानवता को भी तिलांजलि देकर अभङ्गता का व्यवहार क्यों किया?" यह कह कर भगवान उस दीन-हीन व्यक्ति की सोज-सबर लेने वहाँ से चल दिये।

उदारता से परस्पर भी पिघल जाता है

पाश्चात्य विद्वान Home (होम) कहता है—

"The truly generous is the truly wise, and he who loves not others, lives unblest."

"वास्तविक उदार व्यक्ति ही सच्चा बुद्धिमान है, जो दूसरों से प्रेम नहीं रखता, वह दूसरों के आशीर्वाद से वंचित रहता है।"

अकबर बादशाह बीर दुर्गादास को बहुत चाहता था। अकबर की मृत्यु के बाद उदार एवं बीर दुर्गादास राठौर के यहाँ उसकी माँग पर उसकी माहुरादी तथा माहुरादे भेजे गये थे। दुर्गादास चाहता तो औरंगजेब द्वारा जीने हुए उसके जानवर परगने को सौंपने के बन्दे अकबर की सन्तानों को मौरता। मगर उसने उदारतापूर्वक उन्हें सौंप दिया। जब वे औरंगजेब के पास आये तो उसने अपने पौत्र-पौत्रियों को प्रेम से पुकारते हुए कहा—बेटो! तुमने राठौर के यहाँ बहुत ही कष्ट सहे होंगे। फिर तुम्हारा पालन-पोषण हिन्दू-संस्कृति में हुआ है, इसलिए मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मैं तुम्हें इस्लाम धर्म की तालीम दिलाऊँ। कल से ही एक मुंशी को मैं नियुक्त कर देता हूँ, जो तुम्हें मजहबी तालीम देगा। इस पर अकबर की बड़ी माहुरादी ने कहा—अम्माजान! आप अभी तक दुर्गादास बाका को पहचान नहीं पाये। वे मेरे बालिद को अपना भाईजान मानते थे। उन्होंने हमें इस्लाम धर्म की तालीम दिलाने का सारा प्रबन्ध एक तुर्की महिला को रखकर जोधपुर से ही कर दिया था। समय-समय पर वे स्वयं भी आकर हमारे पास बैठते और जाँच भी करते थे कि हफारी पड़ाई ठीक तरह से हो रही है या नहीं?"

यह सुनकर आश्चर्यचकित होकर औरंगजेब बोला—बेटा! क्या कहती हो? एक हिन्दू राजपूत ने तुम्हारे लिए अरबी भाषा पढ़ाने का इन्तजाम किया, मुराने-मरीफ की तालीम दिलाई? फिर एक तुर्की महिला को रख कर? मेरा मन यह मानने को तैयार नहीं होता।

माहुरादी सन्तान बोली—"यह तो प्रत्यक्ष है, अम्माजान! और फिर उन्होंने तो हमें बिना किसी कर्त्त के आपकी मौर दिये। यह क्या कम उदारता है?" यों कह कर माहुरादी ने जब मुराने-मरीफ की आयतें बोलीं, तब तो बादशाह का हृदय दुर्गादास की उदारता के प्रति हिल उठा। पीरन ही औरंगजेब ने अहमदाबाद के सूबेदार पर एक पत्रमन्त्र के साथ एक संदेश लिख कर भेजा—माही सन्तानों



यह असहिष्णुता सिर्फ अपने ही दृष्टिकोण को सचाय मानने, अपना मन, पंथ, अपने प्रियजन या अपनी विचारधारा ही श्रेष्ठ और दूसरों के दृष्टिकोण, मन, पंथ, प्रियजन एवं विचारधारा को निरुपेक्ष मानने की शूद्रता, मकीर्णता एवं मूडना को उभारती है। यह सामाजिक विद्रोह की भावना-बगानी है, एक ओर असहिष्णुता घृणा को जन्म देती है तो दूसरी ओर श्रेष्ठता का दम्भ पनपाती है। दूसरे का विचार, व्यवहार हीनकोटि का समाने लगता है और उसे मिटा देने की भावना उभरने लगती है। यह शूद्र अहं की पराकाष्ठा ही है।

आज हमी असहिष्णुता के कारण परिवार, समाज, जाति, संस्था, संगठन एवं मंडल में संपर्क, व्यापक बन्ध, कूट, द्वेष, ईर्ष्या, झगड़ती एवं घृणा पनर रही है। जिससे न केवल वैयक्तिक तथा पारिवारिक जीवन ही छिन्न-भिन्न और अशान्त बना हुआ है, बल्कि राष्ट्रीय जीवन भी लखड़ लखड़ हो रहा है। कुछ लोग किंगी सार्वजनिक विषय पर बार्तालाप करने-करते निजी प्रसंगों पर आ जाते हैं और फिर असहिष्णु होकर परस्पर कूट आरोप करने लगते हैं, तथा व्यक्तिगत बुराई पर उतर आते हैं। अपनी मर्जी के सिवाक कसामी बात सुनकर भडक उठते हैं। यह असहिष्णुता क्षान्ति-विष दुर्बलता ही मानी जाएगी। इसके कारण समाजों की बातचीत, सद्भावना-पूर्वक बहस या सत्य के द्वार तक पहुँच पाना सम्भव नहीं होता। असहिष्णु व्यक्ति के व्यवहार से लोगों में यह भावना घर कर जाती है कि यह अपने को अडबड़कर देखा है, तथा स्वयं की श्रेष्ठता की डींग होक कर उसकी ओट में हमारा निरादर करना चाहता है। असहिष्णु व्यक्ति के प्रति प्रतिपक्षी की प्रवृत्ति प्रायः प्रतिगोश्यामिनी ही जाती है। वह उसके असहिष्णु व्यवहार से दुःखी होकर उस व्यक्ति के साथ भी दुःखद व्यवहार करने खदना सेने की योजना बनाने लगता है। प्रतिक्रिया में असहिष्णुताबन्ध उद्बेग बढ़ता ही जाता है। तथा विद्रोह की शूद्रधारक एवं हानि-कारक परम्परा बढ़ने लगती है। परिणाम में सन्नाप और अशान्ति हो पल्ले पड़ती है।

हिंसर सदृशियों के प्रति इनका अधिक असहिष्णु बन गया था कि उनके उनका भयकर उत्पीड़न और नृशंस सामूहिक बन्ध किया। मुसलमानों और ईसाइयों में भावनात्मक में मूर्तिपूजन के प्रति ऐसी असहिष्णुता बढ़ी कि उन्होंने इसके लिए रक्तपात से लेकर सटपाट तक की बुर मूर्तिविधियों को अपनाया।

यह निर्विवाद है कि जिसके प्रति व्यक्ति असहिष्णु होता है, उसके द्विर उस असहिष्णु व्यक्ति का अस्तित्व सहन नहीं होता। फलतः कूट, लखड़ और विनाश की विधि उत्पन्न होती है।

इसीलिए एक पाश्चात्य साहित्यकार Shelly (शेली) ने असहिष्णु होना घोर अपराध बताया है—

"It is not a merit to tolerate, but rather a Crime to be intolerant." १



“न तो वस्तु धर्मो मनोऽर्थं निवेद्यते ।  
अध्यात्मिकाणां पापानामासु परमं विपर्ययम् ॥

अधर्म करने वाले पापियों को सुखी, धनी और धार्मिकों को दुखी और निर्धन देखकर भी अधर्म में मन नहीं लगना चाहिए ।

कमजोर नींव का सुन्दर महल

एक महल की दीवारें बहुत मजबूत हैं, उस पर बहुत ही सुन्दर रंग-रोगन बिछा हुआ है, उसमें पर्नीचर सजा हुआ है प्रतिदिन महफिल जमती है, किन्तु उसकी नींव बज्जी है, बालू पर टिकी हुई है तो भला बनाइए वह सुन्दर महल कितने दिनों तक टिका रह सकेगा ? वह एक साँधी का शोवा आते ही धराशायी हो जाएगा । इसी प्रकार हमारे जीवन महल की धनमण्डपिणी दीवारें बहुत गुदगुदी हैं, उसमें विषय सुखों को सब ही रँगरेलियाँ होती हैं । आप भी रागरंग में मूब मशगूल रहते हैं, परन्तु उस जीवन महल की धर्मकी नींव कमजोर हो, कमजोर क्या बिल-कुल ही बज्जी हो, केवल दिखावे का त्रियावाण्ड हो, अन्दर पोलमपोल हो तो बना-इए धर्म की सुन्दर नींव में रहित आपका वह जीवन महल कितने दिन टिकेगा ? आप उगमे कितने दिन आनन्द मना सकेंगे ? आपका अर्थ का ढाँचा घरमराने ही और काम के ग्राह्यरूप शरीर, दृष्टियाँ, अधोपाय आदि चीजें पटने ही क्या आपका जीवन दुःख और व्यर्थानि से परिपूर्ण नहीं हो जाएगा ? और अन्त में ही वज्रपात या धक्का आपकी नहीं मरेगा ? सबकुछ धर्मविहीन जीवन की दशा यही है । धर्म-विहीन जीवन या तो धन के पीछे दीवाना होकर लोभी और कज्जु बन जाता है, या फिर कामवागता के चक्कर में पड़कर विषय-लक्ष्य बन जाता है । दोनों ही प्रकार के धर्महीन जीवन बर्बादी के रास्ते पर होड़ लगाने लगते हैं । उगका जीवन ऐसा पोंहा बन जाता है, जिसमें कोई लगाम नहीं है । ऐसा पोंहा मक्का को या तो ऊँड़ खाने में ले जाकर भटका देता है या उसे नीचे गिराकर उसकी हड्डी-पसली चुर-चुर कर देता है । ये दोनों ही परिणाम धर्म के अकुल में रहित अर्थ और काम का संयत करने वाले के जीवन में दृष्टिगोचर होते हैं ।

धर्म का पतड़ा अर्थ-काम से भारी हो

धर्म का पतड़ा अर्थ-काम के पतड़े में बहनदार हो, सभी जीवन गुप्त जालिन-मय हो सकता है । आपने देखा होगा, भ्रष्ट के अनुगत में गंदी माने में ही जालिन होती है, नींव की गहराई के अनुसार ही मकान बनाया जाता है, रोग व बेग के हिसाब से ही दवा भी माया दी जाती है, आप के अनुसार ही व्यवस्था किया जाता है टकी की ठोकरों के अनुसार ही जल उँचा बढ़ाया जाता है, इसी प्रकार अर्थ-काम की माया के अनुसार धर्म की माया हो या धर्म का पतड़ा भारी हो, सभी आपका वा बिनाग स्वाभाविकरूप में हो सकेगा ।



मागमावी पर कम वर्षा करने बिज्ञान ने अर्हस्य प्राणियों का संहार कर दिया, इसका कारण है—धर्म के नियन्त्रण से बाहर हो जाना । अगर बिज्ञान पर धर्म का अंकुश रहे तो ससार में स्वयं उत्तर मचना है ।

### सुरक्षा और सुख शान्ति : अर्थ काम से या धर्म से ?

प्रत्येक व्यक्ति की सुख शान्तिपूर्वक जीने की इच्छा होती है । इसमें दो तत्त्व मिश्रित हैं— एक जीना और दूसरा है—सुख-शान्ति प्राप्त करना । जीने का मतलब है—अपने अस्तित्व की रक्षा करना और सुख-शान्ति का मतलब है—अपनी अभि-साधनाओं और कामनाओं की पूर्ति करना । इन दोनों तत्वों की पूर्ति के लिए साधारण अदूरदर्शी मानव दो चीजें अपनाता रहा है । वे हैं—अर्थ और काम । वह सोचता है—अर्थ होगा तो मेरी ज़िंदगी की रक्षा हो सकेगी, और काम होगा तो—मुझे सुख शान्ति मिलेगी । परन्तु गम्भीरता में विचार करने पर ये दोनों ही गुरुपाप—अर्थ और काम आगे चलकर मनुष्य को धोखा देते हैं । आराम देह जीवन की सुविधाएँ सुख-शान्ति का कारण नहीं हैं, अर्थ से शान्ति प्राप्त होने की बात विवेकहीन सोचता है; अल्पकालिक तथा निम्न-स्तर जीवन प्रवाह ही सुरक्षा शान्ति का हेतु है, जिसका कारण धर्म है । इसके विपरीत जो व्यक्ति उद्भोगपूर्ण, चिन्तायुक्त एवं अस्वाभाविक जीवन माग करता है, वह दुःखी तथा अशान्त रहता है । विविध प्रकार के कष्ट एवं क्लेश उसे घेरे रहते हैं । ऐसा व्यक्ति एक घण्टा के सुखचैन के लिए तरसता है । कभी उसे शारीरिक व्याधिवाँ सताती है तो कभी वह मानसिक क्लेशों से पीड़ित रहता है ।

एक बार भारतवर्ष के एक धनाढ्य व्यक्ति मुझे मिले । वे कुछ ही अर्से पहले अपनी सा से काफी पैसा कमा कर लौटे थे । उनकी बातचीत से मुझे लगा कि वे अशान्त और दुःखी हैं । मैं उनके दुःख का कारण भाँप नहीं सका, इसलिए पूछा—“सैठजी ! आप तो अपनी सा से बहुत अच्छी कमाई करके आए हैं, फिर यों निराश क्यों दिखाई दे रहे हैं ?”

उन्होंने कहा—बेजान, महाराजजी ! मैं बहुत अच्छी कमाई करके आया हूँ । परन्तु धन का डेर होने मात्र में छोड़े ही सुखशान्ति मिल जाती है ? पैसों से सुख सुविधा के साधन जुटाए जा सकते हैं, अच्छा साया-मीसा जा सकता है, परन्तु सुख तो लक्ष मित्रता है, जब मन में शान्ति हो, शरीर और मन स्वस्थ हो, घर का सागवतन सुलभुमा हों, इसलिए मेरी तो यह धारणा पक्की बन गई है कि धन से—वैश्य धन से सुखशान्ति नहीं मिल सकती ।”

मैंने कहा—“श्रीमन् तो पैसों के पीछे इतना दूर-दूर भागने चिखते हैं, पैसों को परमेश्वर से भी बढ़कर महत्व देते हैं, ऐसा क्यों ?”

अपने हृदय की भाव बिखाले हुए वे बोले—ब्रह्मा महाराज ! इस पैसों ने तो सुख और शान्ति के बदले दुःख और आरग लाई कर दी है । जब मेरे पास पैसा नहीं





ऊर्ध्वबाहुविरोध्येन न च वक्षिच्छृणोति माम् ।

धर्मादर्थंरक्षामश्च स धर्मः किं न श्रेयते ?”

मैं भुगा उठाकर चिल्ला रहा हूँ, परन्तु मेरी बात कोई भी नहीं सुनता। धर्म से ही धर्म और धाम की प्राप्ति होती है। अतः उस शुद्ध धर्म का आवरण क्यों नहीं करते ?”

मिदाम बहुत ही घनलोभुष था। उसने मन में यह ध्यानि दृढ़ हो गई कि मुझ धर्म में नहीं, धन में रहता है। अतः उसने अपने इष्टदेव को प्रगल्भ करके वरदान माँग लिया कि ‘वह जिस वस्तु को छुए वही सोने में बदल जाए। वह खुश होकर घर आया। आने ही अपने मकान, पसल और पोशाक को छुए सोने का बना लिया। मन ही मन खुश होने लगा कि अब तो चारों ओर सुन ही सुन है। कुछ देर बाद उसे भूख लगी। भोजन की पाली छूते ही सोने की बन गई और जो भी खाने की चीजें थीं, वे सब सोने की हो गईं, पानी को छुआ तो वह भी सोने का हो गया। बड़ा परेशान हो गया वह। आखिर भूख-प्यास को बहूँ तक बर्दाश्त करना। सोने की रोटी और सुनहरा पानी खाने पीने के क्या काम आ सकता था ? आखिर परेशान होकर उसने फिर इष्टदेव से प्रार्थना की कि अपना वरदान वापस ले लो। मैं त्रिभुवनि से था, उसी में सुखी था। मैं अब समझ गया कि कोरे धन से सुख नहीं मिल सकता।”

हाँ तो मैं कह रहा था कि कोरे अर्थ से, या धर्मरहित अर्थ से सुखशान्ति का प्रयत्न हम नहीं हो सकता। जो बेचैन है, अशान्त है पीड़ित है वह क्या काम-मुक्त कैसे पा सकेगा ? उसे घर में इन्द्रियों के सभी विषय सामथ्र्य होने हुए भी वे जाने साँझ सवेरा। परिस्थिति, उपयोग या भाव में यदि किसी को धन-सम्पत्ति प्राप्त भी हो गई तो धर्म की बर्बादी न होने के कारण या उस अर्थ का धर्म-कार्य में व्यय न होने के कारण वेचल हृत्पणता से धन पर साँझ की तरह कड़वी मार कर बैठ जाने से क्या सुखशान्ति मिलेगी ? न तो वह उस धन से सुखशान्ति प्राप्त कर सकेगा, न ही उसका उपयोग कर सकेगा।

ऐसे धन से मानव-जीवन की सुरक्षा का स्वप्न भी कैसे पूरा होगा ?

एक ठेठ अश्वत्थ वृक्ष था। उसने बहुत धन जोड़-जोड़ कर तिजोरी में एकट्ठा कर लिया था। न तो स्वयं उस धन का उपयोग कर सकता था, न वह किसी जरूरतमन्द को देता था, न किसी सेवाकार्य में व्यय करता था। बल्कि गरीबों को ऊँचे ब्याज पर पैसा देता और उसमें भी बेईमानी से एक न्यून बढ़ावा कर लेता था। इतना हृदयहीन वृक्ष ठेठ एक दिन बड़ी तिजोरी में बैठे मोठ गिन रहा था, धन देखकर वह प्रसन्न हो रहा था, परन्तु अकालक बाहर से किसी व्यक्ति को जाने देख उसने तिजोरी का दरवाजा बंद कर लिया। सर्वप्रथम वह तिजोरी बंद हो जाने के बाद बाहर से ही सुननी दी, अंदर से नहीं। अतः ठेठ तिजोरी खोल न



ये कि दूगरे दम के सौ डाकू और मिले और उन्होंने इन ५० डाकूओं को पकड़ लिया। पकड़े हुए डाकूओं ने उस ब्राह्मण से अपनी तरह धन प्राप्त करने को कहा। परन्तु धन बरसाने का मंत्रयोग निबल चुका था अतः वह सफल न हुआ, इससे गुड़ डाकूओं ने उसे मार डाला। ५० डाकूओं का सफाया करके उनका धन छीन लिया। आगे चलकर प्रचुर धन के लोभवश उन डाकूओं में दलबंदी हुई। कुछ छिड़ा ज़िममें दो को छोड़ शेष ६८ डाकू मारे गये। धन समेट कर उन्होंने छाडी में छिपा दिया। खाने पीने की सज्जबीज में एक डाकू चावल बनाने लगा। दूसरा शीश आदि से निबूत होने गया लोभवश उसने चावल में जहर मिला दिया। शीश जाकर आते ही दूसरे ने उस पर तलवार से प्रहार किया। वह मर गया। तुर डाकू ने जब जहरीले चावल खाये तो वह भी थोड़ी देर में मर गया। इस पर सभागत ने अपने प्रवचन में अपने गिप्यों में कहा—अनुचित रीति से धन बमाने और अनुपयुक्त मार्ग से उप्रति की बात सोचने वाले व्यक्ति लाभ नहीं, हानि ही उठाते हैं। अपने माथ औरों को भी से दूबते हैं।”

इसी प्रकार कामान्ध व्यक्ति भी धर्म-मर्यादा को नहीं देखता, वह भी येन-येन प्रकारेण अपनी कामवासना को तृप्त करना ही अपना सद्य समझता है। परन्तु उमने कितनी हानि होती है? यह वह नहीं सोचता। शक्ति कामगुप्त अनेक घोर दुर्गों को बुना सेता है।

कुणाल या तो सम्राट अशोक का ही पुत्र—अपने पति की ही सन्तान; परन्तु सोनिया माता तिप्परक्षिता ने कुणाल को अपने कामजाल में फँसाने का प्रयत्न किया। कुणाल ने कहा—‘मा! पुत्र के प्रति ऐसी अनुचित भावना?’ बस, नागिन की तरह फुफकार उठी वह, बदमा सेने की टान बँटी। कुणाल को विद्रोह मान्त करने के लिए महारानी के कहने से सम्राट ने तसगिला भेज दिया। विद्रोह शान्त हो जाने पर अम्बस्य सम्राट की राजमुद्रा लगाकर उनकी कुपावाच कुटिल तिप्परक्षिता ने तसगिला के अभाव के नाम वच में लिखा—‘कुमारः अन्धीयताम्’। अन्धीयताम् के आदेश अनुसार कुणाल की आँखें पोंड डाली गई। बाद में जब सम्राट को पता चला तो उन्होंने रानी को बठोर दण्ड मुनाया। परन्तु कुणाल के बहानुनी करने से माफ कर दिया मगर तिप्परक्षिता सम्राट अशोक के मन में कुपावाच हो गई।

यह है धर्मरहित काम का दुःपरिणाम! इसने अमन्य नरनारिणों का जीवन बर्बाद कर दिया। हमलिए यह निबिबाध है कि धर्म-मर्यादारहित अर्थ और काम में कभी शुभशान्ति नहीं मिल सकती। धर्म के बिना अर्थ और काम एक अक के बिना मूय की तरह हैं। उनका कोई पारमादिक मूय नहीं है।

परन्तु अपसंग तो यह है कि वर्तमानयुग का मानव धर्म पर निष्ठा लीना या रहा है, या तो उसकी निष्ठा अर्थ पर है या सांसारिक विषय-भुजोगभोग पर। एक पारबाम्य सेवक Cecil (मिस्त्र) ने इस पर अपनी प्रतिबिधा व्यक्त की है—



या, कौन अनिय या माधु घर में आता है, उसके प्रति क्या बर्तन्य है ? माधु रसोई घर में गया। उस गृहस्थ की पुत्रवधू बड़ी धार्मिक थी उसने बड़ी भावभक्ति से सन्त को मिथा दी। साथ ही सन्त का दम छोटी-उम्र में वैराग्य देकर उगने पृच्छा—‘मुनिवर ! अभी तो सवेरा है।’ मुनिवर ने कहा—“बहन ! काम का पता नहीं था।” बूढ़ा ! जो अथ तब अपने हिमाय जिताव में मग्न था, चौकन्ना होकर दोनों का कर्तान्याय सुनने लगा। वह प्रश्नोत्तर सुनकर मन ही मन सोचने लगा—ऐसी भूर्ग पुत्रवधू है और ऐसा ही भूर्ग यह सन्त है। दोपहर होने आया है, फिर भी दोनों को समय का पता नहीं है, आश्चर्य है।

मुनिवर ने बहन को धार्मिक ममता कर पूछा—“बहन ! तुम्हारे घर का क्या आचार है ?” वह बोली—“हम तो आभी भोजन करते हैं ? वह सुनकर बूढ़ा अत्यन्त खीज उठा ! ओह, कितना झूठ ? हमारे घर की बदनामी करती है यह तो ! मुनि ने पूछा—“बहन ! तुम्हारे पति की उम्र कितनी है ? तुम्हारे पुत्र की एष तुम्हारे स्वमुर की कितनी उम्र है ? और तुम्हारी आयु कितनी है ?”

उमने कहा—“मेरे पति की उम्र चार बर्ष की है, पुत्र की बारह बर्ष की है, मेरे स्वमुर तो अभी पासने में झूल रहे हैं और मैं बीस बर्ष की हूँ।” यह सुनते ही स्वमुर एवदम बोरायमान हो गए। कितनी गप्प हाकती है यह ?” मुनिवर तो यो कहकर बने गए। बूढ़ा एवदम तन कर आधा और पुत्रवधू से पूछने लगा—“तुम दोनों क्या अटपटी बातें कर रहे थे ? तुमने बासी भोजन के तथा उम्र के विषय में जो अटपट गप्पें हाकी हैं उसका क्या अर्थ है ?” पुत्रवधू ने अत्यन्त नम्रता से कहा—“माताजी ! आपकी इन बातों का रहस्य समझना हो तो मुझ महाराज के पास पधार जाइए। मैं आपसे बहुत कहूँ, यह छोटे बूढ़े, बड़ी बात होगी।”

बूढ़ा सेठ सीधा उपाध्यय में पहुँचा और मुक्क सत के मुद्द से विवाद करने लगा। मुनिवर ने उन मुक्क मुनि को बुलाकर पूछा—ये सेठ, जो कुछ कह रहे हैं, उसका समझान करो। मुक्क सत ने कहा—तुम्हारी पुत्रवधू बहुत गुणवती एक धार्मिक है। उसने जीवन में वैराग्य देकर मुझसे पूछा था—अभी तो बहुत ही छोटी उम्र है, इस उम्र में यह वैराग्य कैसे ? मैंने उसका उत्तर दिया था कि काम का पता नहीं, जब आ धमके, इसलिये मैंने यह वैराग्य लिया है। फिर मैंने घर के आचार के विषय में पूछा तो उसने कहा—यहाँ तो सब बासी खाते हैं। बासी खाने का मतलब है—पूर्वजन्म की जो धर्म-कमाई है उसी को अभी तब खा रहे हैं, नई कोई धर्म कमाई अभी नहीं कर रहे हैं, फिर मैंने उम्र के बारे में पूछा था। उम्र की धार्मिक मुक्कआन सभी जानी जानी है, जब धर्माचरण का जीवन में धीगणेश हो। आपकी पुत्रवधू ने जो बताया उसका रहस्य यही है कि मेरे पति ४ बर्ष से धर्माचरण में लगे हैं, पुत्र १२ बर्ष से लगे हैं, स्वयं बीस बर्ष से लगी हुई है, और आपके लिए कहा कि स्वमुरजी तो अभी धर्म-ध्यान में लगे ही नहीं हैं। अभी तो वे धर्म-काम के पासने में



‘धर्मो रक्षति रक्षितः’ सूत्र याद रखें

क्या आप भारतीय संस्कृति का वह सूत्र भूल गए ? जिगमे कहा गया है—

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः

जो धर्म का नाश कर देता है, धर्म उसे नष्ट कर देता है; किन्तु जो धर्म को रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

सालों वर्षों का अनुभव यह सिखाता है कि धर्म की रक्षा करने से अपनी रक्षा होती है।

एक प्राचीन उदाहरण सीजिए—

विजयपुर नगर के धनघेष्टी जब भीतराग धर्म के सम्मुख हुआ, तब उसकी तली धनघी के गर्भ रहा। पुन जन्म होने पर धूमधाम से जन्ममहोत्सव किया। पुन नाम रखा जिनचन्द्र। धर्मसंस्कारी जिनचन्द्र युवक एक दिन अपने मित्र के साथ स रहा था, तभी किसी हितैषी पुरुष ने नीतिशास्त्र की एक बात कही—‘सौतह का होने पर जो मइका अपने पिता की कमाई हुई सम्पत्ति का उपयोग करता है, पिता का कजंदार हो जाता है।’ अतः इस पर दीर्घदृष्टि से विचार कर जिनचन्द्र ने धान्य को अजमाने के लिए सिर्फ पहने हुए वस्त्रों के सिवाय और कुछ न लेकर जा जाने के लिए घर से चल पड़ा। अनेक गाँवों, नगरों और जंगलों को पार करके वह समुद्र के किनारे आया। वहाँ एक पथिक आया, उसने मुह से समुद्र की निन्दा सुनकर धर्मसंस्कारी गुणघाही जिनचन्द्र ने उसे कहा—“माई ! समुद्र में अनेक गुण हैं। वह रत्नों का भण्डार है, गम्भीर है, मर्यादावान् है।” समुद्र के अनेक उम समुद्र के अधिष्ठापक देव ने प्रगल्भ होकर जिनचन्द्र को एक-एक करोड़ मूल्य ‘पाँच रत्न दिये। रत्न पाकर जिनचन्द्र किसी के जहाज में बैठकर ताराद्वीप पहुँचा। तारापुर के उद्यान में देवरमण नामक यश के देवालय में उसने पड़ाव डाला। उही देर बाद उम उद्यान में बार बुमारियाँ जोड़ा करने आईं। उनमें एक थी— भुवनेश्वर राजा की पुत्री रूपरेखा, दूसरी भुवनतिलक मंत्री की पुत्री रूपनिधि। तीसरी भुवनमुन्दर साधुबाह की पुत्री रूपरोनि धी, और चौथी भुवनचन्द्र सेठ की पुत्री रूपकला की। चारों परस्पर सहेली थी। चारों ने एक दिन राजमहल में बैठे-बैठे ऐसी मन्त्रणा कर ली थी कि हम चारों का एक दूसरे से वियोग न हो इसलिए हम चारों एक ही पति का वरण करेंगी। अपना यह मनोरथ पूर्ण हो, इगने लिए हम उद्यान के देवालय के यश में प्रार्थना करें।” इसी विचार में आज के चारों मिल कर आई थीं। परन्तु यश के देवालय में प्रवेश करते ही चारों ने रूपरगि जिनचन्द्र को देखा। विमल विभुषण होकर चारों ने अपने हृदय में जिनचन्द्र को धारण करने की प्रार्थना की। जिनचन्द्र भी इन चारों के रूप, सौभाग्य और आनुवंशिकी के प्रगल्भ हुआ, परन्तु धर्ममर्यादा के अनुसार जब तक विधिवन् पाणिग्रहण न हो जाए, तब तक किसी प्रकार की ऐसी बातचीत करना नीतिधर्म विरुद्ध हो जानकर कृप रहा।





पहुँचा दिया और एक चिन्तामणि रत्न देकर वह अदृश्य हो गया। जिनचन्द्र अदृश्य-करणी गोली के प्रभाव से अदृश्य होकर राजा के पास पहुँचा। वहाँ चारो स्त्रियाँ बिश्वासपूर्वक यह बातचीत कर रही थी कि 'हमारे धर्मिष्ठ पति हमें अवश्य मिलेंगे।' राजा ने जब यह बातचीत सुनी तो चारो को कुत्तोंगना समझकर प्रातःकाल राज-सभा में बुलाया। उनसे परिचय पूछा गया तो वे बोली नहीं। फिर उन दुष्ट बन्धियों से पूछा तो उन्होने कहा—“मैं परदेश में ऊँची बीमन में खरीदकर आपको भेंट देने के लिए इन्हें लाया हूँ।” परन्तु मन्त्री ने इसे अगम्य बतलाया। जिनचन्द्र भी रूप-परिवर्तन करके वही उपस्थित था। उसने एक श्लोक कहा—त्रिषमे संकेत कर दिया था, अपने परिचय का। स्त्रियाँ उसे पहचान न सकी। मन्त्री और राजा ने परिवर्तित रूप में बैठे जिनचन्द्र से श्लोक का रहस्य पूछा, तब उसने आघोषान्त सारी घटना कह दी। राजा ने उस बन्धियों से जिनचन्द्र को ५ हजार रत्न वापस दिलाकर उसे देश निजाता दे दिया। चारो स्त्रियाँ जिनचन्द्र को लौपी, उसने जब अपना असली रूप बनाया तो वे चारो अत्यन्त हर्षित हुई। राजा के यहाँ कुछ दिन तक रहकर जिनचन्द्र चारों स्त्रियों को लेकर अपने नगर को लौटा। माता-पिता मग्न उसे देख-कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

एक दिन चार ज्ञान के धारक श्री भुक्तमानु मुनि नगर में गधारे। उनका धर्मोपदेश सुनकर जिनचन्द्र ने थावक धर्म अगोचर किया। चिन्तामणि रत्न के प्रभाव से वह सब जोशों को असमर्थान देना हुआ, दान-शील-नय भाव की आराधना करना हुआ गृहस्थ धर्म का पालन करना रहा। अन्तिम समय में सभाधिपूर्वक मृत्यु प्राप्त कर बारहवें देशलोक के इन्द्र का सामानिक देव बना। क्रमशः मोक्षप्राप्ति बनेगा।

यह है अर्थ-ब्रह्मचर्य धर्माधरण का प्रभाव। त्रिषमे जिनचन्द्र गवट के समय भी धर्म-प्रभाव से बचकर महीनतामय रह सका।

धर्ममूलक अर्थकामसेवी को धर्मनिष्ठा

पूनीविए गोदमकुलक में कहा गया है—

‘मिरमा नरा तिमि बि आवरति’

धर्मधर्मादिन अर्थ-काम का मेवत करने वाले (मिष) पुरुष इन तीनों का आचरण करते हैं।

सिद्धा व्यक्ति इन भी ब्रह्माज्ञा है, साधारण गुणों के अनेक साधन भी जुटाना है, और विवाह करके ब्रह्मसुखों का भी अनुभव करना है, गन्तान भी पैदा करना है, परन्तु यह सब धर्मधर्माज्ञा के नियन्त्रण में ही करना है।

यह केवल मरहट के लिए, इन को निजोरी में बग्न करके रखने के लिए अघोषात्रेन नहीं करता, न ही बिनी का शोषण करके अन्धाध-अनीति एवं अधर्म से



## पण्डित रहते विरोध से दूर

घमं प्रेमी बन्धुओ !

संगार में अनेकों कोटि के मानव-जीवन होते हैं। पिछले प्रवचनों में मैं अ परायण, कामपरायण, धान्तिपरायण एवं धर्ममर्यादिन अर्थ-कामयुक्त जीवन का सम्बन्ध में प्रकाश डाल चुका हूँ। आज एक विशिष्ट कोटि के जीवन के सम्बन्ध में चर्चा करूँगा। यह जीवन है—पाण्डित्ययुक्त जीवन। यह जीवन पहले के जीवनों से उच्चकोटि का है। पण्डित के जीवन का अर्थ है—समझदारी और विवेक के प्रमाण से देदीप्यमान जीवन।

पण्डित जीवन की उपयोगिता क्यों ?

जिस मनुष्य के जीवन में धन प्रचुर मात्रा में हो, सुख के साधन भी बहुत हो, वियोगयोग भी सामग्री भी पर्याप्त हो, धार्मिक नियम, व्रत, तप, जप आदि धर्माचरण भी हो, अर्थ-काम का सेवन भी धर्ममर्यादा में होता हो, उसने व्यावहारिक शिक्षा भी अच्छे ढंग से प्राप्त की हो, उस व्यक्ति का परिवार भी भरा-पूरा हो, सौख्यविलासों में भी उसने पाण्डित्य प्राप्त कर लिया हो; इतना होने पर भी उसमें बुद्धि बीगल न हो, विवेक और समझदारी न हो, उसे यथासंख्य से जीवन-यापन करना न आता हो तो उसका जीवन सफल नहीं कहा जा सकता। इसलिए आज के प्रवचन में यह बताया जाएगा कि पण्डित का जीवन किन प्रकार का होना चाहिए ?

हमारे शास्त्रों में 'पण्डितमरण' का उल्लेख आता है। पण्डितमरण भी उसी का सफल माना जाता है, जिसका पण्डित जीवन सफल हो। जो अपने जीवन में पण्डित जीवन जी चुका है, समझदारी और विवेक से धर्मयुक्त जीवन ध्यानीय कर चुका है, वही अपनी मृत्यु को सफल बना सकता है। मृत्यु के समय वही पूरी समझदारी, विवेक, धान्ति और समझ के साथ रहकर वहाँ से बिदा हो सकता है। जाने शरीर को हँसते-हँसते प्रगल्भापूर्वक छोड़ सकता है। इस दृष्टि में पण्डित जीवन का बितना महत्व है ? यह आप अपनी-आप समझ सकते हैं।

जिस व्यक्ति के पास धन, साधन, सुख-कामग्री आदि पर्याप्त मात्रा में हो, स्वस्थ शरीर हो, बुद्धि उबैरा हो, शिक्षा भी अर्जित कर भी हो, परन्तु इतना पाण्डित्य



व्यक्ति को पण्डित की कोटि में रखा जा सकता है ? कदापि नहीं । फाट्टू सन्त बबीर ऐसे लोगो के लिए साफ-साफ कह देते हैं—

पण्डित और भतातवी दोनों सूझे नाहि ।

औरन को करे चाँदना, आप अण्धेरे माहि ॥

जो सच्चा पण्डित होगा, वह उपदेश और आचरण के इस प्रकार के विरोध से दूर होगा । वह अपने जीवन में कोई दुर्बलता होगी तो उसे प्रकट कर देगा या उस सम्बन्ध में दूसरों को उपदेश नहीं देगा । पण्डित का जीवन अपने कथन से बिलकुल विपरीत तो कदापि नहीं होगा । वह सिद्धान्त के अनुरूप अपने जीवन व्यवहार को ढालने का प्रयत्न करता है । सिद्धान्त और जीवन व्यवहार के विरोध को वह कदापि पसन्द नहीं करता ।

कई पण्डित केवल पण्डितों के बीच में ही पण्डित होते हैं । वे अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन सभा मोगाइटियो में नहीं कर पाते । वे पण्डितों के साथ ही विवाहादि अवसरों पर शास्त्रार्थ करने पण्डितमानी बन जाते हैं । ऐसे दो पण्डित कहीं मिल जाते हैं, या किसी यजमान के यहाँ एकत्रिण हो जाते हैं तो प्रान्त एक दूसरे का विरोध (बुरा बोलकर एक दूसरे के पाण्डित्य की मौखिक निन्दा) किया करते हैं । इसीलिए ऐसे पण्डितों पर किसी ने बरग कसा है—

पण्डितो पण्डित हट्टवा मिषः घृष्टपुरापते ।

एक पण्डित दूसरे पण्डित को देखकर ईर्ष्या से घृष्टपुराता है ।

एक बार दो पण्डित एक साथ दक्षिणा की आशा से एक सेठ के यहाँ पहुँच गए । सेठ ने विद्वान् सम्मान कर उनकी बड़ी आबभगत की । एक पण्डित जब स्नानादि करने गए तो सेठ ने दूसरे से पूछा—“महाराज ! आपके साथी तो महान् विद्वान् मान्य होते हैं ।” पण्डितजी ने इसकी उदारता कही कि वे दूसरे पण्डित की प्रशंसा शुन से, विरोध न करें ? वे मुँह बिगाड़ कर बोले—“विद्वान् तो इसके पड़ोस में भी नहीं रहते । यह तो निरा बैल है ।” सेठ खुप हो गए । जब उक्त पण्डित गन्ध्यादि करने बैठे तो पहले पण्डित ने उन्हें कहा—“आपके साथी तो बड़े विद्वान् नजर आए !” ईर्ष्यागु पण्डित अपने हृदय की गहरी बिखरते हुए बोले—“विद्वान् उड़ान कुछ नहीं है, बोर गघा है ।” भोजन के समय सेठ ने एक की थाली में धान और दूसरे की थाली में भुस परोस दिया । इसे देख दोनों पण्डित आगबबूला हो गए । दोनों—“मेठजी ! हमारा यह अपमान ! दूसरी घृष्टता !” मेठजी ने कहा—“महाराज ! आप ही लोगो ने एक दूसरे को बैल और गघा बताया है । मैंने भी दोनों के साथ-साथ मुराक थाली में रखी है ।” दोनों पण्डित अत्यन्त सन्न हो गए और अपना-आप मुँह सेकर चले गए ।

हाँ, तो इस प्रकार के जो साक्षर होते हैं, उनमें एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता,



सबको आत्मवत् देखने वाला पण्डित परदोषदर्शी नहीं होता, क्योंकि उसके लिए कोई पराया है ही नहीं, विरोधी है ही नहीं, सब वह किमके दोष और अङ्गुण देगेगा, अगर कोई दोष और अङ्गुण है तो उसके अपने हैं। ऐसा पण्डित स्वयं कष्ट और दुःख सह कर भी संसार के प्राणिमों को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करता है, माँष, बिच्छू, गिह, बाघ, आदि हिंस्र जन्तु भी उसे अपने परम मित्र समझे हैं। जैदगास्त्रो की भाषा में ऐसे श्रेष्ठ पण्डितों को 'पंडित्या पविषत्तणा' (प्रविचक्षण पण्डित) कहा गया है। धम्मपद में ऐसे पण्डितों के लिए कहा गया है—'अत्तानं वमपंति पंडिता' अर्थात् जो अपनी आत्मा का वमन करते हैं, अपना सर्वस्व आत्मीयतावश दूसरों के हित में लगा देते हैं, वे पण्डित हैं। जहाँ ऐसा विरोध का एवं विकट शत्रुता का वातावरण हो, वहाँ भी वे निर्विरोध रह कर अपनी शान्ति भावना, सहिष्णुता एवं विचारणीयता से विरोध को प्रेम में बदल देते हैं, विकट शत्रुता को मित्रता में बदल आते हैं।

महात्मा गाँधीजी अफ्रीका की जेल में थे। उस समय एक जूनु जाति का सूर्कार और अमर व्यक्ति उनकी सेवा में रखा गया था। परमसहिष्णु गाँधीजी उसके अमर व्यवहार से कभी अप्रसन्न नहीं होते थे। एक बार उस जूनु जातीय सेवक को अफ्रीका के अत्यन्त जहरीले बिच्छू ने काट खाया। वह घोर वेदना के कारण छटपटा रहा था। गाँधीजी ने चाकू से उस जहरीले स्थान को काट कर मुँह से वहाँ का जहर घूस कर घूक दिया और फिर एक वनस्पति का सेप लगा कर पट्टी बांध दी। कुछ ही देर में उसे आराम हो गया। महात्मा गाँधीजी से वह इतना प्रभावित हो गया की उसी दिन से वह एक नम्र सेवक और मित्र बन गया। यह है सच्चा पाण्डित्य, जिसमें विरोध के विष को अमृत में परिणत करने की शक्ति है।

जिसके हृदय में प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और आत्मीयता होती है, जैसे सृष्टि के किसी भी प्राणी में उच्चता या नीचता दृष्टिगोचर नहीं होती। छोटे-बड़े उच्च-नीच या छूत-अछूत का भाव रखना प्रेम नहीं, विरोध है, घृणा है, द्वेष है। प्रेम या मैत्री आत्मा का सहज अविरोधी गुण है, जबकि घृणा द्वेष, बैर, आदि आत्मा का विरोधी दुर्गुण है। जो पण्डित होगा, वह इन आत्मविरोधी दुर्गुणों को अपने जीवन में स्थान नहीं देगा। इसीलिए मीना में पण्डित की दृष्टि के विषय में कहा गया है—

“विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे नहि हस्तिनि।

गुनि चैव स्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥”

“विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण के प्रति, गाय, हाथी, कुत्ता और पाण्डाल के प्रति पण्डित समदर्शी होते हैं।”

अपने पत्नी सबको तथा रिश्तेदारों तक ही प्रेम का प्रतिबिम्बित रखना स्वाभाविक है। इसे प्राणिमात्र तक फैलाना ही परमार्थ है। ऐसा पारमार्थिक प्रेम जिसमें आधाता है, वह व्यक्ति सभी प्राणियों के प्रति समदर्शी हो जाता है। उसकी दृष्टि में





(जंगली) सामने उस कोने में खड़ा है। पर मेरी प्रार्थना है कि इन चारों को आप कोई दण्ड न दें।

राजा ने जंगली को बुला कर सारी हथौड़ा पछी और एक लाख रुपये इनाम दे दिया। इन चारों को प्रत्येक को पच-पाँच रुपये देकर विदा किया। फिर भ्यामसिंह गिरामन में उतरे और रामसिंह को छाती से लगा लिया। कहने लगे—“जैसा सुना था, वैसे ही आप निकले। परोपकार के लिए आपने अपनी जान सतरे में डाल दी। मैं सात जन्म में भी आपके चरणरत्न की समानता नहीं कर सकता। लीजिए, आप अपना राज्य महल और खजाना समालिए। आप ही इस राज्य के लिए योग्य हैं। मैंने आपकी परीक्षा कर ली।”

रामसिंह ने पहले तो बहुत आनाकानी की, लेकिन राजा रामसिंह एक जनता की आप्रहू प्रार्थना पर सेवाभाव से राज्य संचालन का भार स्वीकार किया। गद्दी पर बैठकर अज्ञानशत्रु राजा रामसिंह ने घोषणा की—“शत्रु को कभी मत मारो, उसकी भयानता को मारो।”

यह है, विरोधी शत्रु को अविरोधी—मित्र में बदलने का ज्वलन्त उदाहरण। यही वास्तव में पण्डित का सपार्थ सदान है जो चलाकर किसी से विरोध नहीं करता, न विरोध के कारण उद्विग्न करना है, बल्कि विरोध के सामने नहीं झुककर उसे अनुकूलता में डाल लेता है।

बहुत बार समाज में सकीर्णवृत्ति के, गतानुगतिक, परम्परा के अन्ध-अनुगामी रूपमण्डूक लोग, ऐसे लोगों का विरोध करते हैं जो, उदात्तवृत्ति के, सबको अपना ध्यान कर अपनाते जाने, पुराने विषम-पातक, समाज के लिए अहितकर किसी सिद्धान्त-विरोधी मुगबाहू नियमोपनिषम परम्परा और रीतिरिवाज को बदलकर प्रगति एवं विवास के मध्यम की ओर समाज को ले जाते हैं। ऐसे सकीर्ण स्वार्थवृत्ति के लोग ईर्ष्या, द्वेष या स्वार्थ से प्रेरित होकर ऐसे सज्जन के मार्ग में रोड़ा अटकाने हैं। उसकी मज्जा उड़ाने हैं, उसे भसा-बुरा कहने हैं। उनके इसप्रकार के विरोधी व्यवहार का विद्वान अहिंसक रूप में शान्तभाव से प्रतीकार करता है और उन दुर्बलिकाले लोगों के विरोध को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। अपनी सज्जनता और शालीनता वह नहीं छोड़ता। नतीजा यह होता है, कुछ ही दिनों में उनका विरोध का बबुझर अपने आप शान्त हो जाता है। वे हार मरु कर अपने आप बैठ जाते हैं।

बागी के औरिस्टल महाविद्यालय के महाप्रबन्धन में पण्डित मदनमोहन मालवीय ने एक मध्याह्न का आयोजन किया। मध्याह्न के विभिन्न भागों से प्रकाण्ड पण्डितों का आमंत्रित किया था। मध्याह्न कार्यवाही के प्रारम्भ में पण्डितजी ने बड़े ही मधुर शब्दों में यह बात रखी कि हरिजन भाई हिन्दू समाज के एक अंग बने रहें, छात्रों उन्हें ही बराबरी का स्थान दें और उनके साथ कोई भी गरम छुभातन का व्यवहार न करें तो वे भी अपने को सह्योदी मानते रहेंगे, तथा देश की स्वतन्त्र



की परण यही है कि मानवीय भूतों को वह उदात्तापूर्वक क्षमा करना रहता है, जिससे सम्बन्धों में कटुता नहीं, बल्कि मधुरता बनी रहती है, और बारबार मनविर्मा करने वाले के प्रति पण्डित की क्षमा उसे सही रास्ते पर ला देती है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि जो गलती करता जाता है, उसे पण्डित समझाता ही नहीं, वह समझाना है, आवश्यकता पड़ने पर मधुर उपालम्भ भी देता है, प्रेम-भरी धमकी भी देता है, बिन्दु देता है उपयुक्त अवसर पर ही। वह जब-तब बार-बार उलाहने, धमकी की मार, नुक्ताचीनी, तानाबन्धी या व्यंग्य क्लमना आदि बातें प्रतिशोध या घृणा से प्रेरित होकर नहीं करता, क्योंकि ये दोष शरीर को क्षमत्रोर, स्वभाव को बिडबिडा, मस्तिष्क को खोखला और आत्मा को अपवित्र बनाते हैं। उपयुक्त समय पर कही हुई कड़वी बात भी मीठी लगती है। प्रातःकाल सूर्य की किरणें मुलायम और मधुर लगती हैं, आरोग्यवर्धक होती हैं, वे ही दोपहर में प्रचण्ड हो उठती हैं और लोगों को बीमार तक कर देती हैं। यह समझकर पण्डित पुण्य आविष्कारपूर्ण विधि की टांग देता है। फिर जब उपना का वातावरण समाप्त हो जाता है, या एवान्त में प्रिय व्यक्ति से मिलता है, तब वह उसको अपनी मान-ममता-पूर्वक समझाता है। समझाने में अगर परिहास या कटुता नहीं होती है तो पण्डित की कही हुई बात की समर्थन और सफलता मिलती है।

पण्डित की सारी बुद्धिमत्ता और विचारशीलता परिस्थितियों, समस्या और तानकों को शान्तिपूर्वक गुनगाने में है। कलह और कटुता तो समस्याओं की ओर उत्साहकर उन्हें बिगाड़ देती है। क्षमा, मधुरता, नम्रता, सहनशीलता आदि पण्डित के गुण ऐसे हैं जो विरोधों को शान्त कर सकते हैं। पण्डित का सारा व्यक्तित्व ही एक तरह में जीवन का बटोर परीक्षण है। जो जिनका विचारधीन और बुद्धिमान है, उसे अपना ही उदार और सामाजिक होना चाहिए। सामाजिक एवं उदार व्यक्ति के लिए समाज में जीवन शत्रु है।

इसीलिए पण्डितजन के ८ गुण बताए हैं, जो विगंध विरति में सम्पन्न हैं—

दग्धं नोद्धत्ते न निन्दति परान्, नो भायते निष्कुरम् ।  
प्रोक्तं केनचित्प्रियञ्च सहते चोद्यञ्च नात्मने ॥  
जगत्वा शारत्रमपि प्रभूतमनिगं शान्तिरुत्ते सूचयन् ।  
दोषाच्छादयते गुणान् विमुक्तं चाप्यौ मुना पठिते ॥

अर्थात्—पण्डित में ८ गुण होते हैं। जैसे कि—

- (१) जो दग्ध दिखावा नहीं करता।
- (२) जो दूसरों की निन्दा नहीं करता।
- (३) बटोर नहीं बोला।
- (४) किसी के द्वारा कथित अप्रिय वचन नहीं है।



हर्ष-शोक, विषाद, चिन्ता, उद्विग्नता आदि इन्द्रो—स्वभाव विरुद्ध बातों से गर्दैव दूर रहता है। चिन्ता और भय तो उमंग मगाने हैं, जिनमें अपने और अपने के प्रति भाग्य हो और दूसरों के प्रति घृणा अथवा अपने स्वार्थ में अगुरक्त हो और परमार्थ में विरक्त। जब पण्डित लोग अपने स्वार्थ में तल्लीन हो जाते हैं, दूसरों की गुणवृद्धिओं या लामो या बिलकुल ध्यान नहीं रखते, तभी दुःख, विपत्ति, कष्ट और भय उपस्थित होते हैं। स्वार्थपराता के कारण उन पण्डितों की बुद्धि विकृत होती है। परन्तु जो मनुष्य पण्डित होते हैं, अर्थविभाग या बटवारा करते समय भी उनके मन में पक्षपात या स्वार्थभाव नहीं आता, यही कारण है कि वैरविरोध या मतभेदों से उनके मन नहीं फटते।

नवद्वीप (नदिया) के प्रसिद्ध विद्वान् रामशिरोमणि और उनका छोटा भाई रघुमणि विद्यामय माय-माय रहते थे। वे जितने विद्वान् थे, उतने समझदार और मन में रहते बाने थे। उन्होंने बहुत धन कमाया, फिर भी सम्पत्ति का बटवारा नहीं किया। एक दिन रामशिरोमणि ने रघुमणि से कहा—“भाई ! अब हम सम्पत्ति का बटवारा कर दें तो अच्छा है।” रघुमणि बोले—“क्या कहा आपने ? जो भूल्य होते हैं, वे भूल्य होते हैं, हम पण्डित होकर क्या भूल्य होते ? भूल्य होते हैं, वे स्वयं विरोध के विष में युक्त हो जाते हैं और अपनी सतन में भी विरोध का विष बीज बो जाते हैं।” “मोग हम क्या कहेंगे ?” रामशिरोमणि बोले—“हमें भूल्य नहीं होना है, परन्तु लड़कों की सम्पत्ति बांट दे तो अच्छा है, अन्यथा भविष्य में हमारी तरह एकना और अविनाशी प्रेम से रह सकें, ऐसी सम्भावना कम है।” रघुमणि ने कहा—“दादा ! जैसी आखी इच्छा !” रामशिरोमणि ने पारी सम्पत्ति के दो हिस्से किये। एक में अपने तीन पुत्रों का हिस्सा और दूसरे में अपने छोटे भाई के एक पुत्र का हिस्सा। यह बटवारा देखकर रघुमणि ने कहा—“भाई ! यह आपने क्या किया ? अगर हम अपने हुए हो तो दो हिस्से करने ठीक थे। परन्तु अपना तो पुत्र हो रहे हैं। हमारे पारी पुत्रों के पार हिस्से कर दीजिए। इसी में मेरा मन प्रसन्न रहेगा। परन्तु पण्डित शिरोमणि नहीं माने। उन्होंने दोनों भाईयों के दो हिस्से ही किये। अगर रघुमणि ने अपने पुत्र के हिस्से में से दो हिस्से और बाँके समविभाग कर दिया।

वास्तव में जो पण्डित होते हैं वे पारीयों स्वार्थबुद्धि नहीं होते। वे उन पार भूतपण्डितों की तरह अन्यायी नहीं होते, जिनमें अपनी बारी पर माय की दृष्टि बिना, मगर उगे पार दाना नहीं दिया। पण्डितों की बुद्धि की विशेषता बनाने हुए कहा है—

ना प्राप्यमभिधातुनि नष्ट नेष्टनि तोषिषुम् ।

आपत्तविवि न मुह्यन्ति नरा पण्डितवृत्तयः ।

पण्डितबुद्धि वाले मनुष्य अप्राप्त्य को, तो क्षुब्ध प्राप्त नहीं हो पानी उमंग प्राप्त



“बल ! पिता के हृदय में गुरु (पण्डित) का सर्वोच्च महान् होता है ।” इतना मा संक्षिप्त उत्तर देकर शास्त्रीजी घर की ओर चले गये ।

पुत्र का अनुराग प० गंगाधरशास्त्री के अध्यापन-वर्तुष्य में बाधक न बन सके ।

सच्चे पण्डित के जीवन में एक विशेषता होती है कि उसे चाहे विरोधियों— समाज-विरोधी आचरण वालों के बीच भी छोड़ दिया जाए या रहना पड़े तो भी वे शान्ति, धर्म, महिष्णुता और सद्भावना से विरोधियों के दिल को जीत लेते हैं, उनका हृदय परिवर्तन कर देते हैं, विरोधी आचरणवालों को सामाजिक जीवन से अविरোধी आचरण वाला बना देते हैं ।

रहीम कवि ने कितनी सुन्दर बात कह दी है—

ओ रहीम उत्तम प्रकृति, हा करि सके कुसंग ।

अदम विष ध्याएत नहीं, सपटे रहत भुजंग ॥”

भावार्थ स्पष्ट है ।

पण्डित रविशंकर महाराज महात्मा गांधी के लोकसेवक बने, उससे पहले वे गुजरात की अपराधी पाटणवाणिया जाति के पुरोहित थे । रविशंकर महाराज के इन महानो का मुख्य पेशा खोरी करना था । जो पाटणवाणिया जितना अधिक खोरी कर लेता था, वह अपनी जाति में उतना ही अधिक आदर-मान माना जाता था । जो पाटणवाणिया एक मप्ताह तक खोरी करने नहीं जाना था, उसकी स्त्री उसमें रठ जाती थी, और उसे निठूला, निकम्मा और डरपोक कह कर निरसृत करती थी । लेकिन प० रविशंकर महाराज ने इन और ऐसी ही अपराधी जातियों के बीच नित्यपण ने रहकर आरमोयता के सम्बन्ध स्थापित किये और अपने अन्तःकरण की पवित्र प्रेमधरी धारों से उनके अंध, खोरी, भ्रष्टा और आसक्त आदि दुर्गुण छुड़ाए । उनके समझाने से कई लोग प्रतिज्ञा कर लेते और नये आजीवन निभाते ।

उन्होंने कई भयंकर आनकवादी डाकुओं से मिलकर और उनके बीच नित्यपण रहकर उन्हें इनकी आत्मीयता से समझाया कि कितने ही डाकुओं ने इकती छोड़ दी और समाजसेवी कार्य करने लगे ।

इस प्रकार पण्डित विरोधियों के बीच भी अविरোধी रहने हैं, अल्प विरोधियों का वे विरोधी जीवन भी बदल देते हैं ।

विरोध कहाँ-कहाँ और कौन-कौनसे ?

पण्डित का मुख्य मशाल जो विरोध से बिरल रहना बताया गया है, अब यह प्रश्न उठता स्वाभाविक है कि विरोध कहाँ-कहाँ और किन्-किन रूप में आता है ? विरोध के खों बौन-बौन में है ? जिन्हें जानकर पण्डित जीवन जीने का अधिपानी मानव उन विरोधों में विग्न नह सके ।





है आप ? मैं तो आपकी गुण मानता हूँ । उधर द्विवेदीजी का भी यह तर्क था कि आप तो मेरे गुरु हैं ।" बाद में डा. महोदय ने द्विवेदीजी का अभिनन्दन करते हुए कहा—“मुझे एक बार द्विवेदी जी ने तोय निगम के लिए कहा । बड़ी मुशिल से समय निकालकर मैंने एक लेख लिखकर इन्हें भेजा । लगभग एक मास बाद 'सरम्भनी' में आदि में अन्य तब द्विवेदीजी ने सन्तोषित करके प्रकाशित किया । दमस्त मैं तो सदैव यही कहूँगा कि द्विवेदी जी मेरे गुरु हैं, क्योंकि इन्होंने सन्तोषित करके मुझे हिन्दी लिखना सिखाया है ।

इस प्रकार भी नम्रता और निरभिमानता जब पण्डित में होंगी है, तो कहीं विरोध नहीं होता, बल्कि नम्र मनुष्य दूसरों से बहुत कुछ सीख सकता है । अगर ये दोनों पण्डित अहंकारी होते तो इनमें परस्पर विरोध होता, एक दूसरे को ये भता-चुरा कहते और कटुता फैलती ।

अहंकारी पण्डित दूसरों को नीचा दिखाने और स्वयं महान् बनने के लिए दूसरों—प्रतिस्पर्धियों को मिटाने की कोशिश करता है । इसके परिणामस्वरूप परस्पर मर्षण, पदों की छीनाछाटो आदि विरोध पैदा होने हैं । जो विद्वान दूसरों को मिटाकर, दूसरों को नुकसान पहुँचाकर, उनकी गृह्णाचीनी करके आगे बढ़ने का स्वप्न देखते हैं, उनका अग्रगण्य होना निश्चित है । ऐसे व्यक्ति अपने चारों ओर विरोधियों और अग्रहयोगियों की घमटल गहरी कर लेते हैं । मत विनोबाजी के शब्दों में गफ-मत्ता के मिटाने की श्याम्या इस प्रकार है—“पड़ोसी के पास ७ सेर ताकत है और मेरे पास १० सेर । यदि दोनों परस्पर टकराएँगे तो परिणाम में १०—७=३ सेर ताकत ही बच रहेगी । दोनों पक्षों की ही हानि होगी । यदि दूसरी स्थिति में मिलकर हम बिना जख्मेगा तो १० + ७=१७ सेर ताकत पैदा होगी, जिसमें गफ-मत्ता अधिक भाग में अहित होंगी । मेरे दो हाथ और आपके दो हाथ मिलकर ० + ०=४ हाथ होते हैं, किन्तु जब य परस्पर टकरावेंगे तो नतीजा २—२=० शून्य ही निश्चिता ।

जब मर्षण दूसरों की गर्दन काटकर स्वयं बनाने की कोशिश करते हैं, दूसरे के बढ़ने हुए पैरों की खींचकर स्वयं आगे बढ़ने का स्वप्न देखते हैं, दूसरों का गुन गुन कर स्वयं मोटा बनना चाहते हैं, दूसरों को उखाड़कर अपना घर बनाता चाहते हैं, दूसरों का गुन छीनकर स्वयं गुनी बनना चाहते हैं ता निश्चित है कि इन मर्षात्र विरोधी अमानुषिक बापों के परिणाम अन्ततः प्रतिफल व दुःखद ही मिलेंगे । तिरा की विरोधी प्रतिनिधता अवश्य होती है । अब पण्डित का मर्षात्र विरोधी चारी, दर्बनी, हाथा, झूठ झोपण आदि में गर्दब बनना चाहिए ।

अहंकार के घात मनुष्य दूसरों का अपमान और निरहकार भी कर बैठता है, मागकर अपने से छोटी का अपमान वह बानबान में कर बैठता है, परन्तु ऐसा करने में विरोध की प्रतिनिधता पैदा होती है । पण्डित मदनमाहन मालवीय के कुछ शीर्षक



समयानुसारिता के बिना नियमित, व्यवस्थित एवं संयमित रूप में प्राप्त नहीं हो सकती।

महात्मा गांधीजी समय की कीमत एवं महत्ता जानते थे। वे अपने साथ समय का सदुपयोग करने हेतु मर्यादा एक जेबघड़ी रखा करते थे। जेबघड़ी रखने का उद्देश्य यही नहीं था कि उन्हें समय का ज्ञान होता रहे, बल्कि यह भी था कि वे स्वयं समयबद्ध अपना प्रत्येक कार्य कर सकें, तथा जो लोग उनसे मिलने आएँ वे भी निर्धारित समय से एक मिनट भी अधिक न ले सकें। मुम्बई अमेरीकन पत्रकार लुई फिशर जब गांधीजी से मिलने आए, उस समय बार्नालाय का निर्धारित समय बीत जाने पर गांधीजी ने उन्हें अपनी घड़ी दिखाई कि बातचीत का समय समाप्त हो चुका है। फिशर ने अपनी पुस्तक में एक पत्रकार की हैसियत में लिखा है कि 'मेरा ग्राम ही एक ऐसी जगह थी, जहाँ उन्हें घड़ी दिखानाकर यह संकेत कर दिया गया था कि मुलाकात का समय बीत चुका है।'

समय को एक पाश्चात्य विचारक ने मोने की तितनी बनाया है—

'Time is chrysalis of eternity'

अर्थात्—समय अनन्तकाल की एक स्वर्णिम तितनी है। समय को खोना अमूल्य जीवन को खोना है, यह बात संजन पुरुष भली-भाँति जानते हैं। इसलिये वे समय की बर्बादी उपेक्षा नहीं करते। भगवान् महावीर ने पावापुरी के अपने अन्तिम प्रवचन में समय का महत्त्व और मूल्य बताने के लिए ही गणधर गौतम को सम्बोधित करने हुए एक ही वाक्य को कई बार दोहराया है—

समयं गोयम ! मा पमापए ।

हे गौतम ! क्षणभ्रातृ का भी प्रमाद मत कर ।

भगवान् महावीर का यह उपदेश समार के समस्त श्रापकों के लिए है, जगत् के समस्त राजानों के लिए है कि ये जीवन के एक क्षण को भी प्रमाद में न छोड़ें। प्रमाद जीवन का मरण है। इच्छमरण तो होता रहना है, मगर प्रमाद आदि के वश में होकर मिथ्यात्व अविरति, ब्रह्माद, अशुभकृति-प्रवृत्तियों में समय को खोना आत्ममरण है। इच्छमरण की अपेक्षा आत्ममरण अधिक भयंकर है। धीमद राजवन्दजी ने कहा है—

"क्षण-क्षण भयंकर आत्ममरण का भरो राखो रहो?"

समय पालन : शाश्वत जीवन की कुञ्जी

ऐसा साधक समय का एक बण मर समय भी व्यर्थ खोना नहीं। एक बणि मारवादी भाषा में कहा है—

धन उल साधक ले, जो वसपल सफल बनावे रे ।

जो पण-पण जागृति लावे रे ॥धन०॥

सम-सम में आध्यात्म बण, जोगी अमल बनावे रे ॥धुब॥



वैद्य ब्रह्म भट्ट ने जामसाहब के स्मारक में एक लाख कोरी खड़ा लिखाया, मगर स्थिति ऐसी थी नहीं, उनके एक पुराने रोगी से अजुना को पना चला तो उन्होंने वैद्यजी के यहाँ एक लाख कोरी भिजवा दी। भट्टजी ने अपने मुनीम से कहा—“देखो धर्म की गति कितनी तेज है ! इन्हें अभी ही जामसाहब के यहाँ पहुँचा दो।

बन्धुओ ! हमीलिए कहा भया है—“ते साहूणो जो समयचरंति” सत्पुरुष समय के पारखी, ज्ञाता व अवसर का उचित उपयोग करते और समय के अनुसार अपने जीवन को ढालते हैं। वे धर्मकार्य या सत्कार्य में कभी विलम्ब नहीं करते, प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते हैं। आप अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहते हैं तो समय के पारखी बनें। वास्तव में जो समय को पारखना है और उसका उचित उपयोग करता है, संसार में वही सु-पुरुष, भत्पुरुष या उत्तम पुरुष बन सक्ता है।





वैद्य शङ्ख भट्ट ने आमसाहब के स्मारक में एक साथ कोरी धन्दा लगाया, मगर स्थिति ऐसी थी नहीं, उनके एक पुराने रोगी से बन्धुना को पता चला तो उन्होंने बंछजी के यहाँ एक सास कोरी भिजवा दी। भट्टजी ने अपने मुनीम से कहा—“देखो घमं की गति कितनी तेज है। इन्हें अभी ही आमसाहब के यहाँ पहुँचा दो।

बन्धुओ ! इसीलिए कहा गया है—“ते साहूणो जो समयवर्ति” सत्पुरुष समय के पारपी, ज्ञाता व अवसर का उचित उपयोग करते और समय के अनुसार अपने जीवन को ढालते हैं। वे धर्मकार्य या सत्कार्य में कभी विलम्ब नहीं करते, प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते हैं। आप अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहते हैं तो समय के पारपी बनें। भारतवर्ष में जो समय को परगना है और उनका उचित उपयोग करता है, संसार में वही सु-पुरुष, सत्पुरुष या उत्तम पुरुष बन सकता है।







तो मार्गानुमारी या सामान्य सम्बन्धी आवश्यक तक की भूमिका अपना लेता है, इगसे आगे की प्रतबद्ध एवं धर्मनिष्ठ आवश्यक की भूमिका तक वह नहीं पहुँचता। सत्य, शिव और सुन्दरम् इस जीवननिर्माता त्रिपुटी में यह 'सुन्दरम्' की ही विशेष पसन्द करता है, सत्य उसको स्वार्थमय और सकीर्ण जीवन जीने में बाधक प्रतीत होता है, 'शिवम्' के लिए भी उसे परमार्थ और परोपकार के पथ पर घसना पड़ता है, जो उसे दुःगह लगता है। इस प्रकार सामान्य व्यक्ति का व्यावहारिक जीवन समार के स्थूल दृष्टि वाले लोगो की दृष्टि में कदाचित् धन की प्रचुरता होने के कारण या शरीर सौन्दर्य, विशिष्ट कला, विद्या या प्रचुर बौद्धिक वैभव होने के कारण प्रशंसनीय और आदरणीय बन सकता है, व्यवहार में वह संसार का सुखी, प्रतिष्ठित और आरामतलब व्यक्ति समझा जाता है, उसे सासारिक लोग अधिक सन्तान पैदा करने के कारण, अधिक धन-उपाजन करके थोड़ा-सा राहत कार्य में खर्च कर देने के कारण अथवा अपने परिवार या समाज में या राष्ट्र में किसी को मारने, किसी को मुँह में हराने या किसी को कुश्नी में पछाड़ने अथवा मोन्दय आदि की प्रतियोगिता में अग्र-स्थान पाने के कारण सम्मानित किया जा सकता है, वह चुनाव आदि में तिजडम-बाजी के द्वारा उच्च पद या शता का स्थान भी प्राप्त कर लेता है, यहाँ तक कि पुण्य या राहत के अनेक कार्य करके वह दूर-दूर तक प्रतिष्ठा भी पा लेता है। जहाँ भी जाता है, अपने पूर्व प्रबल पुण्य के कारण, अपने धुमाधार भाषणों से लोगो को प्रभावित कर देता है, अपने वचनों से आम जनता को आकर्षित कर लेता है, अनेक लोगो को अपने इशारे पर बंधा सकता है, अनेक व्यक्तियों को अपने अधीन नौकर-चाकर रख लेता है, अपनी आलाची या बहादुरी के कारण या साहसपूर्ण कार्यों के कारण सासारिक लोग उसे अभिनन्दन-पत्र देते हैं, उसे उच्च-आसन देते हैं, उच्च पद भी देते हैं, उच्च अधिकार भी देते हैं। धार्मिक या आध्यात्मिक क्षेत्र में भी वह अपनी वाचाशता, धन-सम्पन्नता, आलाची और तिजडमबाजी से हजारों-लाखों लोगो को अपने अनुयायी बना लेता है, यहाँ तक कि अध्यात्मयोगी, अवतार, गुरु, धर्मनेता, आचार्य या भगवान् के नाम से वह संसार में पूजा भी पाता है। उसकी भाषणशैली और सेगनशैली हमनी आकर्षक होती है कि उगमे आकर्षित होकर लोग उसके पैर पूजते हैं, हजारों-लाखों रुपये उस पर न्योछावर कर देते हैं, उसे हाथों में उठा लेते हैं, उसके लिए एक में एक बटकर गुन-सुविचारें पेटा देते हैं, यहाँ तक कि विशिष्ट सुन्दरियाँ, अनेक ऐश-आराम के साधन, बगले, चार और अचलन साधन उसकी सेवा में प्रस्तुत कर देते हैं। संसार का कोई भी मोज-मोक का साधन ऐसा नहीं, जो उसकी सेवा में प्रस्तुत न किया जाता हो। उसके थोड़े-से चमारबारों, हाथ की उपार्ध या आङ्गुर जैसे संलो पर लोग सट्ट हो जाते हैं, किसी को पुत्र दे दिया, किसी को धन दे दिया, किसी को मुकद्दमे में जिता दिया, किसी रोटी को टिक कर दिया, किसी की बिम्बा दूर कर दी, किसी को उच्च पद या शता का स्थान दिला दिया या किसी को अच्छी गोबरी दिला दी, बग, फिर बग पूछना, लाखों लोग उसके पीछे-पीछे



जानता है। यह समय आने पर जीवन के उच्चतम मूल्यों और आदर्शों के लिए अपने प्राण ग्योछावर करने को तैयार रहना है। यह यह भली भाँति जानता है कि मुझे यह मानव-जीवन क्यों और किसलिए मिला है? इसका उद्देश्य क्या है? इसलिए यह धर्म के आदर्शों और सिद्धान्त पर हट रहे हुए अपना जीवन जीता है। उसकी दृष्टि, श्रद्धा एवं निष्ठा उत्कृष्टतम आदर्शों की ओर रहती है। उसका प्रत्येक जीवन व्यवहार सिद्धान्त में अविरल होता है। इसीलिए वह अपने जीवन में अर्थ-काम को गौण और धर्म को मुख्य समझता है। धर्म-प्रधान अर्थ-काम ही उसके जीवन व्यवहार में स्थान लेते हैं। धर्म को छोड़कर अर्थ और काम को किसी भी मूल्य पर स्वीकार न करने को वह तैयार रहता है। यही कारण है कि सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्ति अपना जीवन सत्त्व-गुण, मोने, पद-तिग लेने, मन्तान पैदा कर लेने या धन और भाषणों का उपार्जन कर लेने में नहीं मोता, किन्तु वह इन्हें मानवीय दुर्बलता समझ कर इनमें ऊपर उठकर त्याग, तप, नियम धन और धर्ममर्षा से ओत-प्रोत होकर जीता है। योगी भर्तृहरि के शब्दों में ऐसे सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्तियों का जीवन देखिए—

निन्द्यु मोतिनिपुणा, यवि वा स्तुवन्तु,  
सखीः समाविशतु, गच्छतु वा ययेष्टम् ।  
अर्थं वा मरणमस्तु पुणान्तरे वा,  
म्याप्यात् पयः प्रविचलन्ति पवं न धीराः ॥

—नीति निपुण लोग उसके सिद्धान्तनिष्ठ जीवन की निन्दा करें या प्रशंसा करें। सखी चाहे आती हो या ययेष्ट रूप से चली जाती हो, मृत्यु चाहे आज ही आने वाली हो या दुःख-दुःख तक जिन्दगी चले, किन्तु सिद्धान्तनिष्ठ धीर पुरुष न्याय-संपन्न मार्ग से एक ब्रह्म भी विचलित नहीं होते।

वे धन वा चाहे जितना प्रलोभन हो, हितने नहीं, काम-वासना के चाहे जितने आकर्षण हो, वे विचलित नहीं होते, पद, प्रतिष्ठा, शक्ति, अथवा अन्य किसी भी भौतिक वस्तु के बढ़े-से बढ़े प्रलोभन को वे क्षणमात्र में ठुकरा देते हैं। प्रेम और धर्म दोनों में से एक मार्ग चुनने का जहाँ अवसर उपस्थित हो, वहाँ वे प्रेम को छोड़कर श्रेय को ही अपनाते हैं, चाहे फिर उनमें लिए उन्हें जितना ही मूल्य चुकाना पड़े, जितनी ही आर्थिक क्षति सहनी पड़े, जितनी ही सुखमुविद्या छोड़नी पड़े, जितने ही भौतिक प्रशंस के साथ वा त्याग करना पड़े, और चाहे जितना ही कष्ट, दुःख एवं विपदाएँ सहन करनी पड़ें। वे इसके लिए हर दम तैयार रहते हैं, किन्तु सभी श्रेय स्वार्थ के लिए वे अपने सिद्धान्त या परमार्थवाद को किसी भी मूल्य पर छोड़ने को तैयार नहीं होते। जीवन के उच्च आदर्शों और निश्चित सिद्धान्तों को ठुकरा कर वे पशुता या दानवता के मार्ग पर हगिर नहीं बढ़ते। वह स्वयं में भी सिद्धान्तों के सामने वे समर्पण करने को तैयार नहीं होता, चाहे फिर जितनी ही बलिदानों के भार, उसने छापी और मित्र या परिजन तक उसका साथ छोड़ दें, चाहे भयंकर ने



अध्यवस्था नहीं होनी, शान्ति होने पर माघना भी उन्माहपूर्वक होनी है। अपने जीवन के निर्माण तथा आध्यात्मिक विकास के लिए भी सिद्धान्ताश्रय लेना आवश्यक है।

मिथान्त का सहारा लिये बिना क्या कुमारपाल राजा अपनी जीवन नैया लक्ष्य की दिशा में धे मरना था ? कदापि नहीं, वह भटक जाता, और ऐसा भटकना कि फिर ऊँचा उठना कठिन होता।

कुमारपाल राजा की कुलदेवी कष्टवैश्वरी के मन्दिर में नवरात्रि के छवसर पर तिरीह पशुओं का निःशुक्र बलिदान होता था। मन्दिर के पुजारी ने आग्रह किया—“राजन् ! बलिदान के लिए बकरे, पाँडे आदि का इंतजाम कीजिए।” राजा कुमारपाल आचार्य हेमचन्द्र का परमभक्त था, उन्हीं से उमने अहिंसा सिद्धान्त का स्वीकार किया था। अहिंसक राजा यह हिंसा जनक कार्य कैसे कर सकता था ? अतः वह इस समस्या के समाधान के लिए आचार्य हेमचन्द्र के पास गया। उन्होंने कुमारपाल को गुप्त राम दी। तदनुसार पुजारी के बड़े अनुमार राजा ने ठीक समय पर बकरे व पाँडे कष्टवैश्वरी देवी के मन्दिर में भिजवा दिये। जब बलिदान का समय आया तो राजा अपने कुछ कर्मचारियों को लेकर मन्दिर में पहुँचा और तमाम बकरों और पाँडों को मन्दिर के अहाते में रख करके बाहर में दरवाजे नगवा कर ताते बंद करवा दिये। बाहर गन्ध पहरा बिठा दिया।

कुनरे दिन प्रातः बान होने ही राजा ने स्वयं वहाँ पहुँच कर मन्दिर का ताला मोटा तो सभी पशु मनुष्य जीवन थे। राजा ने देवी के पुजारी से कहा—“देवी ! यदि देवी की इच्छा इन झूठे पशुओं को स्वा जाने की होनी तो स्वयं मार कर खा जाती, परन्तु उसने एक भी पशु को नहीं खाया। इसने स्पष्ट है कि देवी को पशुवध करके उनका भान माना बिलकुल वगन्द नहीं, पुजारी साँग माम माने की अपनी सोनुपता की देवी के नाम पर खोपते हैं। ‘अन आज मे देवी के मन्दिर मे पशु-बलि बढ’ फल और मिठाई मे देवी की पूजा करो।” सो कहकर सभी पशुओं को छोड़ दिया।

हाँ, तो मिथान्त के पालन में बिनने जीवों को अभयदान मिला, स्वयं कुमारपाल राजा की शान्ति मिली।

कुछ समय पश्चात् राजा के शरीर में कोंट हो गया तब भी कई राज्याधिरारियों ने उनसे पशुबलि देने को कहा, मगर मिथान्तिनिष्ठ कुमारपाल राजा ने कहा—मैं निर्दोष पशुओं की हिंसा करने अपने प्राण बचाना नहीं चाहता। मेरे शरीर की बलि हा मरनी है, पर मेरे जीने-जी मेरे राज्य में पशुबलि नहीं हो सकती। यह है, मिथान्तिनिष्ठ का ज्वलन्त उदाहरण जिनने मुक्तिवैश्वर्य कुमारपाल राजा को अमर और महान् बना दिया। साम्प्रत में मिथान्तिनिष्ठ मनुष्य की मर्यादा का प्रमाणपत्र है।

आपने बट वृक्ष देखा है न ? वह जितना ऊपर उठा और फैला हुआ दीनवा है, उतना ही वह जमीन के भीतर घगा हुआ होता है। उसकी जड़ें काफी गहरी, काफी घेरा घेरनी और काफी सरसा में होती हैं। यदि वे न हो, कम हो या कमजोर



पुरिमा ! तुममेव तुमं मितं, किं बहिषा मितमिच्छसि ?

पुरो ! तुम ही तुम्हारे मित्र हो, बाहर के मित्र को क्यों चाहते हो ?

अपनी शक्ति, क्षमता, सामर्थ्य, प्रामाणिकता और कार्यक्षमता पर विश्वास रखकर ही व्यक्ति सिद्धान्त पर दृढ़ रह सकता है। अगर आप अपनी शक्ति, सामर्थ्य एवं क्षमता को स्वल्प मात्र सेंगे, अपनी कार्यक्षमता और प्रामाणिकता पर विश्वास नहीं करेंगे तो स्वयं आत्महीनता के शिकार बनेंगे, दूसरों की दृष्टि में भी दुर्बल और अमर्थ्य सिद्ध होंगे। आत्मविश्वास के बिना आप में आत्मबल नहीं आयेगा और आत्मबल के बिना आप पग-पग पर सिद्धान्त के मामले में विचलित होंगे एवं समझौता करने रहेंगे। आत्मविश्वास से सिद्धान्त रक्षा के मामले में जो भी कठिनाइयाँ आयेंगी, उन पर आप विजय पाने बनेंगे। एमर्सन ने कहा—आत्मविश्वास सफलता का मुख्य रहस्य (कारण) है।

महान्मा गांधीजी में शत्रु का आत्मविश्वास था। तभी तो अंग्रेजों की इतनी बड़ी शक्ति के विनाश के अनेक और निराश्र होकर भिड़ गए। अहिंसकयुद्ध से अंग्रेजों का हृदय हिला दिया। स्वराज्य प्राप्ति उनके आत्म-विश्वास का ही फल था यद्यपि उनके साथ अनेकों लोगों ने इस स्वराज्य में आहुतियाँ दी हैं, परन्तु अगर वे आत्मविश्वास को देने तो स्वराज्य नहीं मिल सकता था।

सिद्धान्त पथ पर चलते समय वही व्यक्ति स्थिर रह सकता है, जिसमें अद्वय आत्मविश्वास हो। यह संसार नाना प्रकार की विघ्न-बाधाओं, विपत्तियों और विरोधों से भरा है। आत्मविश्वास बाल्य में एक शक्तिशाली जहाज है। जो जीवन यात्री को बिठा कर मया सिद्धान्तशरीर-रत्न को सुरक्षित रूप से साथ लेकर दुर्लभ विज्ञान भ्रमरागर को आसानी से पार कर देता है। सिद्धान्त रक्षा के लिए सबसे बड़ा साधन आत्मविश्वास है। जिसप्रकार हाथ में अनेक शस्त्र होते हुए भी कायर व्यक्ति कोई जौहर नहीं दिखाना सकता, उसी प्रकार शरीर, मन, वचन, प्राण, बुद्धि आदि अनेक साधनों के होते हुए भी आत्मविश्वास के बिना मनुष्य सिद्धान्तनिष्ठा का समर्थक नहीं बना सकता। आत्म-विश्वास का छनी व्यक्ति साधनहीनता की अवस्था में भी अपना पथ प्रदर्शन कर लेता है।

जो व्यक्ति अनेकपन के या दुःख जाने के भय से गहरे पानी में उतरता ही नहीं वह उस जलमय को पार कैसे कर सकता है ? जो व्यक्ति इस सोच-विचार में पड़ा रहता है कि क्या बच्चे ? कैसे बच्चे ? मैं कैसे मंजिल तक पहुँचूँगा, वह कुछ भी नहीं कर पाता। उसका अर्थ प्रति विश्वास भंग जाता है। उसका जीवन भी निष्प्राण-मृग हनप्रभ हो जाता है। कोई जेतना या तेज उसमें नहीं रहता। व्यावहारिक कार्य में भी उसके महत्व अपूरें रहते हैं, पारमार्थिक कार्य में भी। जो समय में पड़ा रहता है, उसमें कोई बड़ा कार्य नहीं हो सकता, वह जो काम प्रारम्भ करता है, उसमें भी असफल रहता है, जिसमें उसका रहा गया विश्वास भी नष्ट हो जाता





में छुटकारा पाने के लिए धर्मध्वजी लोगो ने सती-प्रथा का प्रचार कर रखा था। अतः जयमोहनराय की पत्नी को भी सती होने के लिए उकसाया गया। वह बेचारी विगी नरह तैयार हो गई। बिना में आग लगाई गई। अग्नि की करुण ज्वालाओं का जब शरीर में स्पर्श अमल्य हो उठा तो उसका धैर्य टूट गया। वह कराहती हुई अधजली हो चिता में बाहर भागने लगी। विन्दु धर्मध्वजियो और कुटुम्बियो ने बाग का प्रहार कर उसका गिर फोड़ डाला तथा उस अधजली को फिर से चिता में शोक दिया। सती का दर्दभरा विस्मय उपरिष्ठत लोगो को सुनाई न पड़े इसके लिए होन, नयार और भय बजाए जाने लगे। मुबक राममोहनराय की आँखों में इस नृशंस नूर कृत्य को देख कर आँसू उमड़ आए। 'अहिंसा परमो धर्म' के सिद्धान्त की हत्या होने देख उन्होंने बिना की परित्रमा करके श्मशान भूमि में ही दृढ़ संकल्प किया जब तक इस नूर नरहत्या की प्रथा का अन्त न कर दूँगा, तब तक धैर्य से नहीं बैठूँगा।" और मधुमुच राजा राममोहनराय ने सती प्रथा कानूनन बन्द करा कर ही दम लिया। ऐसे महत्त्व बात में ही वे अहिंसा सिद्धान्त की रक्षा कर सके।

मिद्धान्तनिष्ठा के लिए तीसरा आवश्यक गुण है—धर्म पर अविचल आस्था। मत्प, अहिंसा आदि धर्म पर अविचल आस्था अथवा अपने कर्तव्य और दायित्व रूप धर्म पर अटल श्रद्धा हो तो मनुष्य मिद्धान्तनिष्ठ रह सकता है। धर्म पर अटल आस्था न हो, तो मनुष्य अपने सिद्धान्त पर टिक नहीं सकता।

रामनगर की राजकुमारी चवत्तकुमारी के रूप, भावण्य पर बादशाह औरगजेव विरा हो गया। बादशाह ने चवत्तकुमारी को अपने हृदय में लाने का विचार बनाया। इसलिये रामनगर के ज़ायेरदार ठाकुर के पास जवाहरानो की एक बड़ी भेंट भेजी, उसे देखकर वह खोया और जब उसे बादशाह की बढीमत का पता चलता तो भेंट वापस कर दी। परित्याग यह हुआ कि बादशाह लामो की फौज के साथ चढ़ आया। इधर चवत्तकुमारी के पिता के पास मुट्ठीभर फौज थी, फिर भी वह धर्मरक्षा के लिए सर्वस्व बलिदान देने को तैयार हो गया।

यह समाचार जब मेकाह के तत्कालीन राजा राजमिह को मिला तो वह अपने राजदरबारियों के विरोध के बावजूद अत्याचारी का प्रतिरोध करना अपना धर्म समझ कर रामनगर के ज़ायेरदार की सहायता के लिए आ उठा। राजा राजमिह ने धर्म का आधार लेकर अत्याचारी में मुड़ किया, विजय धमनिष्ठ राजा की ही हुई।

मिद्धान्तनिष्ठा के लिए चौथा आवश्यक गुण है—चरित्रबल। जिसमें थोरा साधुदायिक बटुहरना का धर्म होगा, ईमानदारी, नीय साधना, अहिंसा आदि चरित्रबल नहीं होगा, वह व्यक्ति कभी मिद्धान्तनिष्ठ नहीं हो सकता है। दुनिया में अगर कोई अपना प्रभाव दूसरे पर डाल सकता है तो चरित्रबल ही है। चाहे मनुष्य की शिष्टा बल मिमी हो, उसमें शक्ति कम हो, उसके पास ज़मीन ज़ायदाद भी न हो, समाज में उसे कोई शान पदवी प्राप्त न हो, पर यदि उसका चरित्र मुहक एवं ऊँचा है तो उसका



साधुचरित पुण्य सुख और दुःख में भी समभाव रखता है। चाहे उम्र पर बगोटी के पहाड़ दूट पड़ें, और सुख का सागर सहारने लगे, वह अपनी मस्ती में, समना भाव में रहता है। सुख हो चाहे दुःख दोनों ही अवसरों पर उसके चेहरे पर झगझना अठनैलियाँ करती रहती है। समभावान व्यक्ति बगोटी और किरनियों में पवनाग नही, बल्कि अपने आपकी गन्तुवित रसकर धर्म में वह उनका सामना करता है। उर्दू शायर जबर के शब्दों में—

“हर आल हैसी, हर आल तुसी, हर जक अभीरी है बाबा।  
जब आलम भात फाँर टूटा, फिर क्या दिलगीरी है बाबा ?”

अवस्थान का सान्दान पर का एक लटका विपत्ति में कम जाने से शत्रुओं के हाथ में पड़ गया। उन्होंने उम्र सुखाम के रूप में बेच बाबा। उम्रका मानिक बड़ा निर्दय था। एक व्यापारी उम्र राय में व्यापार के निमित्त आया करता था। उसने हम युवक को बगोटी परिचयम करते देखकर पूछा—‘भाई ! तुम्हें बड़ा दुःख है।’ सुख दुःख में समभावी युवक बोला—“जो पहने नहीं था और भविष्य में रहेगा नहीं उसने लिए धर्म के कपों बिना की जाए ?” बट्टी कपों बाद फिर वह व्यापारी हम राय में आया तो उम्र पता क्षमता है कि उम्र युवक का मानिक मर गया है और वह अपने मानिक की गिरी हासन देखकर उमरी पत्नी और पुत्र का भरण-पोषण स्वयं अपनी बमाई में करता था। व्यापारी ने हम समय उम्रकी हासन पूछी तो उम्रने कहा—“जो परिवर्तनशील है उम्र सुख भी कपों माना जाए और दुःख भी क्यों ?” दो साल बाद फिर वह व्यापारी आया तो देता कि यह दास अब उम्र जिन का अवस्थान बन गया है। उसके अधीन बहुत से नीच काम करते हैं। आम-पाम के शीशानों ने उम्र गरदार (नेवा) बनाकर वहाँ के डाकुओं को देवा दिया है। हम नेवा के बदले में उन्होंने हमें बहुत-सी जमीन भी दे दी है। ऐसी समृद्ध स्थिति में व्यापारी द्वारा मुख-दुःख सम्बन्धी प्रश्न पूछे जाने पर उसने पूर्ववत् उत्तर दिया। थोड़े कपों बाद जब वह व्यापारी हम राय में आया तो देता कि युवक अब राजा बन गया है। एक विदेश मुद्र में उम्रने राजा की सहायता काफी पढ़वाई, जिसके कारण राजा ने उम्र अपना जामाना और उत्तराधिकारी बना दिया है। व्यापारी ने अब राजा बने हुए उम्र दास से पूछा—“कपों अब तो सुखी हो गए न ? अब ना मुख लज्जा, पीछा, ऐं आराम करो।” उम्रने कहा—“जो परिवर्तनशील है, उसके भरणमें मैं नहीं क्षमता, मैं तो शाश्वत सुख के मूल समन्व पर चक्कर अपना जीवन व्यतीत करता हूँ।” उम्रका समन्वमम साधर अक्षर के शब्दों में था—

सुमोक्ष में न पछरा, कर गुजर जैसे बने बैसे।

ये दिन भी जाएंगे एक दिन, वे दिन भी आएंगे एक दिन।

समृद्ध सुख में पूजना और दुःख में सहकना, ये दोनों ही स्थिति समना में भद्रवाने वाली हैं। समना की पगडड़ी पर चलने वाला सुख और दुःख दोनों में समना और मानिक का धनुषव कम्पा है।



सब कहि समता को जीवन का श्रुंगार बनाने हुए बढ़ता है—  
समता जीवन का श्रुंगार ।

बहुते विषमता जितने ऐसा, क्यों करते व्यवहार ? ॥ ध्रुव ॥  
विष का बीज खपन करके, जितने अमृत पत्र पाया ?  
उज्ज्वलता बिन आत्मा में क्या, धर्म कभी टिक पाया ?  
मेड मुद्रांग के समता से स्वतन्त्र बने सारार ॥ समता० ॥  
धन्यता की हृष्यहिंसा हूँ, समता को घारा से ।  
मुक्त हो गई देगी क्षण में, कष्टों को चारा से ॥  
बीरप्रभु ने मिल गया जितको सुन्दरतम उपहार ॥ समता० ॥  
सबमुख समता के पथ पर चलनेवाले साधुओं के बाट, मकट और आफने  
कभी टिकी नहीं रह सकती । उन्हें समता का सुन्दर प्रतिरूप तो मिलता ही है ।  
विषमप्रभु में भी समता के कारण उनके हृदय में कभी कलुषितता या मलिनता नहीं  
आती ।

समता-भाषक निन्दा और प्रशंसा, बदनामी और प्रतिष्ठा तथा आलोचना-  
और प्रगति के कारणों में न कभी पड़ने और उत्तेजित व द्रुष्ट भी नहीं होते हैं,  
और न वे फूलने हैं, गर्वोन्मत्त होने हैं, अभिमान में घम नहीं होते हैं । वे प्रशंसा,  
प्रतिष्ठा या प्रगति पाने के लिए साक्षात् नही होते और न ही कोई निन्दा,  
बदनामी या आलोचना का काम करते हैं, किन्तु तेजोवैद्य, ईशान, विदेही या  
साम्प्रदायिक उन्माद में उन्मत्त लोग अकारण ही उनकी बदनामी करने जनता की  
दृष्टि में उन्हें नीचा दिखाने, उनकी आलोचना करने सम्राज में उनके प्रति श्रद्धा को  
घटाने तथा निन्दा करने उनके उत्कर्ष या प्रगति को रोकना चाहते हैं । स्वयं उच्चा-  
चारी, किया पात्र या अध्यात्मयोगी बहूमाने के लिए दूसरों को नीचा, गिराना-  
बागी या धुनित बनाने की प्रवृत्ति साधु सम्राज में भी बहुत बल पड़ी है । परन्तु  
सच्चा साधु इस प्रकार की निन्दा, गाली या अपमानों की बीछारो से अपना स्वीकृत  
पथ नहीं बदलता । वह समभाव के आनेप पथ पर चलकर अपनी उन्नत मन स्थिति  
का परिचय देता है ।

एक समभावी साधु बहो जा रहे थे । एक व्यक्ति ने उन्हें देख कर गालियाँ  
दीं—“तू बड़ा नाजायब है, दुष्ट है, गलीब और गदा है ।” समभावी साधु ने शान्ति  
पूर्वक उत्तर दिया—“भाई ! तुम्हारा बहना बिबुल सत्य है ।” यों कहकर वे आगे  
बढ़ गये । गाँव के निबट पट्टे तो नर-नारियों को पता चला और वे झुट के झुट उनके  
स्वागत के लिए आए । वे नारा लगाने लगे—“घनी छम्मा । छह काया के प्रतिपाद  
ने घनी छम्मा आदि । इस प्रकार का गुणानुवाद सुनकर मुनिवर ने कहा—‘तुम्हारा  
बहना भी सत्य है ।’ मुनि की बात सुनकर गाली देने वाला पशोप्रेत में पड़ गया ।  
उसने सोचा-‘इन्होंने गाली देने पर भी मुझे मत्त नही और गुणमान करने वालों को  
भी सत्य बताया । इसमें कुछ रहस्य होना चाहिए ।’



सौराष्ट्र प्रदेश को पचाना बड़ा कठिन होता है। क्योंकि विद्या के समय तो शक्ति प्राप्त होती है, किन्तु प्रत्यक्ष के समय यह शक्तिहीन हो जाता है।

एक कपूर बालकाल में लीं कि कोई ऐसा आदम सोच बना नहीं करता  
आर सो सोचो सोच बना। कपूर सोच विचार का सोचो सोचो सोचो सोचो  
बननी। एक दिन एक बालकाल में कपूर ने सोच बना सोच बना सोच बना  
के बीच में जो का बूट बना। कपूर ने कपूर बना बना, कपूर बना बना बना  
पहलान बना। सोच का बालकाल में सोच बना बना बना। कपूर ने सोच  
पहलाने की सोच बना बना। कपूर ने कपूरों की सोच बना बना — कपूर का  
बालक की कपूर बना है। ऐसा बालकाल में सोच एक बालक में कोई नहीं हुआ  
पहलान बना कपूर कपूरों में सोच बना है कभी नहीं है। कपूर कपूर का कि  
बालकाल का कपूर का बालक की बालकाल में सोच है सोच बना बना बना। कपूर  
कभी सोचनी यह नहीं है। कपूर ने सोच बना बना बना बना बना बना बना  
नहीं है।”

[illegible][illegible]





बनता है। भगवद्गीता में भग. १२ में विद्याभ्रम के लक्षण में बताया गया है—  
'समचोष्ठ्यात्मकाचनः' बहु वेदा पाषाण और स्वर्ग पर समभाव रखता है। श्री  
आनन्दपनडी ने भी शान्ति की प्राप्ति के लिए यही बताया है—

मान अपमान चित्त सम गणे, सम गणे बन्धन पाषाण ये ।

घण्टक-निन्दक सम गणे, इस्थो होय नू जान रे ॥शा० ६॥

सर्व जगज्जन्तु ने सम गणे, सम गणे तुलमणि साव रे ।

भुक्ति-मंगार सेऊ सम गणे, घुणे सबजन निधिराय रे ॥शा० १०॥

शान्ति का अविनाशी साधक सम्मान और अपमान के समस्त चित्त में सम रहे,  
मोना और पत्थर दोनों को समान समझे। जब नू इस प्रकार का समभाव हो जाएगा,  
तभी समझता कि मैं शान्तिपिपासु हूँ। जगत् के समस्त प्राणियों को आत्मद्रव्य की  
दृष्टि में समान समझे, निन्दका और मणि दोनों को पुद्गल की दृष्टि से समान माने,  
भुक्ति में निवास हो या मंगार में, अनिष्ट (वीतराग) भाव में दोनों को समान समझे।  
इस प्रकार समताका शान्तिभूमि को साधक मंगार समुद्र तारने के लिए नौका समझे।

इस प्रकार अमृत-अमृत दोनों में समता को शान्ति प्राप्ति के लिए अनिवार्य  
बनाया है। निन्दका और मणि, मोना और पाषाण दोनों में समभाव की वृत्ति तभी  
गुदुह हो सकती है जब समत्वसाधक धनु-नव्य का सहाराई ले विन्यास करता है, और  
मोना और मणि पर समता न रखकर समताभाव रखता है। समता या आसक्ति ही  
दुःख का कारण है, जब समता या आसक्ति जीवन में ओतप्रोत हो जाती है, तब बहु-  
मूल्य से बहुमूल्य पदार्थ पर के वियोग होने या संयोग न होने पर उसे खोपम नहीं  
होगा। उसके पास गृहस्थजीवन में धनसम्पत्ति आदि रहने पर भी वह उसमें निज,  
आसक्त या झुंझि नहीं होगा वह मर्यादित परिग्रह या नाम-मान का परिग्रह रखकर  
जीवन की सुखशान्तिमय बना लेगा।

पट्टरपुर में राका और उसकी पानी बाँका दोनों स्वेच्छा से गरीबी धारण  
करने समभावपूर्वक जीवन-यापन करते थे। इनका समभाव इनका सुदृढ़ था कि मोना  
और मिट्टी दोनों को बराबर समझते थे। एकबार राका और बाका लकड़ी काट  
कर जंगल से आ रहे थे, कि रास्ते में अचानक एक मोने की धैनी से राका के पैर  
का स्पर्श हुआ। राका ने देखा कि बाका की वृत्ति चलित न हो जाए, इसलिए राका  
उम गीने की धैनी पर मिट्टी डालने लगा। "अचानक बाका ने देखा तो उसने पूछा  
"क्या कर रहे हैं?" वह जो गीने की धैनी है, उस पर जरा धूल डाल रहा हूँ, ताकि  
उसे देखकर तेरा मन चलित न हो" इसलिए मैं उस पर धूल डाल रहा हूँ।" बाका  
बोली—"बाह! यह धूल तो है ही, धूल पर धूल का क्या इधना?" बिलंबी समता  
पी, राका-बाका में। वे मोने और धूल में कोई अन्तर नहीं समझते थे।

निर्णायक ही मन मोना और धूल में समभाव रखते हैं। उनका मन मोना



पहुँचाया। तत्पश्चात् स्टीमर के कर्मचारियों को एक्-एक् गवहो का सामना दिया, ताकि वे तैरकर अपनी जान बचा लें। ब्रैण्टन ने भी अपने लिए एक तख्ता रखा था, जब सब व्यक्ति स्टीमर से बाहर समुद्र में बूढ़कर तपने के सहारे चल पड़े तब ब्रैण्टन समुद्र में बूढ़ने ही वाला था कि अचानक एक लडका दिखाई दिया, जो स्टीमर के एक कोने में बैठा था। उसे ब्रैण्टन ने कहा नू अभी तब चुरचाप बसो बैठा रहा ?" उसने कहा—मैं गरीब हूँ। मेरे पाग टिकट के पैसे नहीं थे, इसीलिए मैं बिना टिकट चढ़ गया था।" समझारी ब्रैण्टन ने अपने हिस्से का बचा हुआ एक तख्ता देते हुए कहा—'ले यह तख्ता ! इसके सहारे तैरकर समुद्र पार कर ले।' ब्रैण्टन अपने निराधार स्त्री बच्चों की परवाह बिना ही अपने हिस्से का तख्ता उस लडके को दे चुका था, इसनिम्न अब उसके पाग प्राण बचाने का कोई साधन नहीं था। थोड़ी ही देर में स्टीमर में पानी भर गया, ब्रैण्टन ने मन्तोपपूर्वक जल-समाधि ले ली। इसे कहते हैं—व्यक्ति समभाव ! जिस व्यक्ति के जीवन में यह समभाव आ जाता है, वह अपने प्राणी या अभीष्ट वस्तुओं की परवाह नहीं करता। इसीलिए भगवद्गीता में समत्वबुद्धि पर जोर दिया गया है—

मुदुन्मिप्रापुं दामोन मध्यस्थ द्वेष्य-बन्धुषु ।  
साधुर्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

—अध्याय ६/२

जो पुरुष मूढत् (निस्वार्प हितैषी), मित्र, वैरी, उदासीन (निष्पक्ष), मध्यस्थ (मत्सर्य), द्वेषी और बन्धुगणों के प्रति, मज्जन पुरुषों और पापियों के प्रति समबुद्धि—निष्पक्षपान-भाव वाला है, वही समताप्राप्तियों में विशिष्ट है। इसके बाद जानि समभाव का नम्बर आता है। समत्वबुद्धि वाला व्यक्ति गृहस्थ हो तो वह अपनी जानि-कौम में रहेगा, फिर भी उसकी बुद्धि में ज्ञानपान, छुआछूत, पक्तिभेद आदि का व्यवहार तथा अन्य जानि-कौमों के प्रति भेदभाव नहीं रहेगा। वह पक्षपातरहित होकर प्रदेव जानि-कौमों के प्रति समभाव रखेगा, उनके मौलिक अधिकारों का हनन नहीं करेगा।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का विभाजन होने ही भारत और पाकिस्तान में हिन्दुमुस्लिम दंगे हो रहे थे। गांधीजी की जाति-समभावों आत्मा यह देखकर निल-मिना डठी। उन्होंने स्वयं नोजमानों जाकर इन कौमों दंगों को शान्त कराया। दोनों कौमों के अग्रगण्यों को समझाया। पाकिस्तान को भारत के सरकारी खजाने से हिन्दू लोगों का विरोध होने हुए भी अमुक धन-राशि दिलायी। यह जानि समभाव का कवल उदाहरण है। छुआछूत, जातिपान का भेद तो गांधीजी को छू भी नहीं गया था। बल्कि अग्रगण्योडार के निम्न स्वयं के प्राणप्राण में जुटे थे जातिभेद या वर्णभेद के कारण जो अत्याचार गृहवर्ण या हरिजन जाति पर सबकों द्वारा किये जाते थे, उन्हें गांधीजी ने एक्-एक् करके मिटाने का पुरुषार्थ किया था।



से मोक्ष और मोक्षी गांधी को बड़े सम्मान व प्रेम के साथ तीर्थयात्रा (हज) करने के लिए आगे जाने दिया। मोक्षी गांधी का हृदय भारत के मन्त्रियों की पर-धर्म-महिम्ना और उदारता की नीति से प्रभावित हुआ। तीर्थयात्रा से लौटने समय फिर मोक्षी गांधी ने मन्त्री तेजपाल के पास गङ्गा के किनारे विधाम लिया। मन्त्री ने प्रेम से अनिष्ट मन्त्रार करके उनका हृदय जीत लिया। मोक्षी ने अपने मुत्तान के समस्त भारतीय मोक्षी के परधर्म-महिम्ना और उदार व्यवहार का बयान दिया तो मुत्तान ने भी प्रभावित होकर मन्त्री तेजपाल के प्रति श्रद्धा और आदर के साथ मन्त्रिधर्म भेजा और अनुमति दिया कि यह देश आपका है। हम आपके सामन्त हैं। हमें भी अपनी सेवा का अवसर देकर सभी अनुगृहीत कीजिए।"

महामन्त्री तेजपाल के धर्मममभाव का कितना जबरदस्त प्रभाव मोक्षी और मुत्तान पर पड़ा। इसी हम अनुमान कर सकते हैं कि धर्मममभाव की समतानिष्ठ धार्मिक के लिए कितनी आवश्यकता है। छत्रपति शिवाजी भी परधर्ममहिम्ना से। उन्होंने कई जगह मुस्लिमों को अपने धर्मस्थान बनवाने के लिए मदद दी थी।

दृष्टि-ममभाव भी समतानिष्ठ जीवन में आवश्यक है। दृष्टि-ममभाव का अर्थ है, दूसरों के दृष्टिकोण पर भी धैर्य एवं महिम्नापूर्वक विचार करना, उन्होंने यह बात किम अपेक्षा से कही है? तथा किम अपेक्षा तब यह बात यथार्थ है? इस प्रकार निष्पत्ति एवं अनेकान्त दृष्टि से विचार करना दृष्टि समभाव है। आचार्य हेमचन्द्र और हरिभद्रगुरु ने दृष्टि समभाव बूट-बूट कर भरा था। जब आचार्य हेमचन्द्र को कुमाय-पाव राजा ने विरोधियों के कहने में प्रभामपाटन स्थित महादेव मन्दिर के उत्सव पर आमन्त्रित किया, और हेमचन्द्राचार्य के पधारने पर उन्हें कहा गया—महादेव' को प्रणाम कीजिए। वहाँ उन्होंने जैन-दृष्टि और शैव-दृष्टि का समन्वय करते हुए महादेव की स्तुतिपूर्वक नमस्कार किया—

यत्र तत्र समये धोर्जति सोऽस्यभिषया मया तथा ।

बीजदोषकलुषः स खेद् एक एव भगवन् । नमोऽस्तुते ॥

त्रिम-त्रिम समय में जिन किसी नाम में जो कोई भी महापुरुष हुआ हो, अगर वह रागद्वेषादि दोषों से रहित है तो वह एक ही है, हे भगवन् । आपको मेरा नमस्कार है।

इसके पश्चात् श्रीहेमचन्द्राचार्य ने महादेवाष्टक बनाया, जिसमें महादेव का वास्तविक स्वरूप बताया गया है। इसी प्रकार मानन्दुगाचार्य ने भी भक्तानन्द स्तोत्र में बीनराग प्रभु की ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, पुरुषोत्तम आदि के रूप में भी बताया है। योगीश्वर श्रीशानन्दधनजी ने त्रिम त्रिम स्तवन में छहदर्शनो को त्रिनेश्वर प्रभु के अंग बताया है।



मुक्तता, और मोक्षता है। ऐसे समग्रनिष्ठ साधकों के लिए भगवद् गीता का आशीर्वादन है—

इहैव तंजितः सर्वो देवाः साध्ये स्थितं मनः ।

निर्दोषं हि मम ब्रह्म, तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

जिनका मन साध्ययोग (समत्वभाव) में स्थित है, उन्होंने इसी जीवन अवस्था में सारा सगार जीत लिया अर्थात् वे जीने जी सगार में मुक्त हो गए। क्योंकि बीत-गम परमात्मा निर्दोष (दोषों में रहित) और सम है। इस कारण वे एक तरह से परमात्मा में ही स्थित हैं। इसी लिए गौतम बुद्ध ने कहा गया—

‘ते साधूणो जे समयं धरंति ।’

साधु यह है, जो समता का आवरण करे।





शुनता, और बोलता है। ऐसे समग्रनिष्ठ साधुको के लिए भगवद् गीता का आशीर्वाचन है—

इहैव मैजितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म, तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥

जिनका मन साम्ययोग (समत्वभाव) में स्थित है, उन्होंने इसी जीवन अवस्था में साग समार जीत लिया अर्थात् वे जीने जी गये और मुक्त हो गए। क्योंकि बीन-गाय परमात्मा निर्दोष (दोषों से रहित) और सम है। इस कारण वे एक तरह से परमात्मा में ही स्थित हैं। इसी लिए गीताम बुलक में कहा गया—

‘ते साधुषो जे समं धरंति ।’

साधु वह है, जो समता का आचरण करे।









गुनिधियों की कामनाएँ गंभीरा रहना है, वचन से भी उनी गुविधावाद की प्रशंसा करना है, शरीर में भी यह गुण-गुविधा एवं भाग्यविनाश में प्रवृत्त हो जाना है, उस पर संकट हावी हो जाते हैं, परिस्थितियों उस पर गहरा हो जाते हैं। यह स्वयं उनी महद् गुणगुविधाओं की तरफ दृष्टि जाता है, जैसे अनुपम काल गहरा जलधारा या हवा पारंग आग की लपटें प्रदान हो जाती हैं।

धर्म से जरा भी न डगमगे चाना : सत्यवान्

सत्यवान् पुण्य अपने धर्म में एक दिन भी विचलित नहीं होगा, क्योंकि यह जानता है कि धर्म पर दृढ़ रहने में ही मनुष्य अपनी आत्मिक शक्तियों का विकास कर सकता है। उददेश्यमात्रा में बहा है—

सत्य-नियमं गुडितवान् कल्पायं जीविष्यं च मरणं च ।

जीवन्तश्च जतिं गुणा, मया पुन गुणाई जति ॥४३॥

—नय-नियमरूप धर्म में स्थित जीवों का जीना और मरना दोनों ही अच्छे हैं। जीवन रह कर तो वे गुणों का अर्जन करने हैं, और मरने पर सद्गति को प्राप्त होने हैं।

स्वराज्य-आन्दोलन के सिलसिले में एक बार महात्मा गांधीजी और कस्तूरबा आश्रमवा आई। वे वहाँ के प्रसिद्ध काँग्रेंसी भाई के यहाँ ठहरे। वे जमादार से और अफीम खाते थे। बापू को जब मानुस हुआ कि मेरे मेजवान काँग्रेंसी भाई अफीम खाते हैं, तो उन्होंने उन्हें समझाया। इस पर उन्होंने गांधीजी के समक्ष याचकजीवन अफीम न खाने का नियम से लिया। बापू को उन्होंने वचन दिया कि वह अपने नियम पर दृढ़ रहेंगे। बापू और बा दोनों वहाँ में वर्षों पहुँचे। इधर उक्त काँग्रेंसी भाई की तबियत एक दम बिगड़ी, इनकी बिगड़ी कि सारे शरीर और पेट में बेचैनी व पीडा होने लगी। उनकी पत्नी से यह न देगा गया। उसने छोड़ी-सी अफीम से लेने का अनुरोध किया, परन्तु वह किसी तरह भी खाना नियम तोड़ने को तैयार न हुआ। आगिर उनकी पत्नी ने बापू को पत्र लिखा कि "आप भेरे पति देव का नियम तोड़ कर अफीम सेवन करने के लिए विनित। मुझे मुहाग-दान दीजिए, अन्यथा इनकी मरणागम्र हानत है"। बापू ने उस पत्र का उत्तर इस आज्ञा का दिया—"बहन ! मुझारे पतिदेव ने जो नियम लिया है, उस पर दृढ़ रहने हूँ यदि मृत्यु हो जाती है तो हमारे बटवर अच्छी बात कौन-सी होगी ? कायरों की तरह मरने की अपेक्षा धर्म-पानन करने हुए शीर की तरह मरना अच्छा है। रही मुझारे मुहाग की बात, तो अफीम खा लेने से भी मुझारा मुहाग अच्छल नहीं रह सकेगा। मृत्यु तो जिस दिन निश्चय है, उस दिन आएगी ही। इनकी कोई गारंटी नहीं कि अफीम खा लेने से मुझारे पतिदेव मरेंगे नहीं। मैं तो मुहाग की अपेक्षा धर्म के फल को महत्वपूर्ण मानता हूँ। धर्म पर दृढ़ रहने में दोनों ही मिल सकते हैं। फिर तुम धर्मरानी हो, इसलिए धर्म पर अपने पति को दृढ़ रखना मुझारा बन्धन्य है।" पत्र पढ़ने ही बहन



धन, पद, सत्ता या अधिकार का मोम दिगाने पर अपने धर्म से विचलित होता है, वही मत्स्यजान् है, वही मनोबन्धी है, परिगम्यति विजयी है, माहृग और धर्म से मत्स्य है। माहृग से तेम ही व्यक्तियों को धर्मवीर या दृष्टमी कहा गया है। ऐसे व्यक्तियों के रोम-रोम में, अंग-वस्त्र में, संस्कारों में धर्म रम जाता है, उन्हें रिक्तता ही प्रतीत होती या डराओ, ये धर्म से बदाभि चटु नही होते।

कामदेव और अर्हन्तक धावक की धर्मदृष्टता के विषय में पहले यह युक्त है, देवता द्वारा बटोर में बटोर परीक्षा करने पर भी वे धर्म पर अहिम, अटल रहे।

जिनदाम श्रावक को धर्मपरीक्षा करने के लिए देव ने उसके समक्ष उसके पौत्र पुत्रों को मृ-एक बरतें मार डाला, और उसी धर्म छोड़ने के लिए विवश किया, मगर धर्मवीर जिनदाम श्रावक ने धर्म बर्तन छोड़ा।

भारतीय इतिहास में सातवर जैन-इतिहास में ऐसे अनेको उदाहरण मिलते हैं कि वे मत्स्यजान् पुण्य धर्म की परीक्षा के क्षणों में अपने धर्म से जरा भी इधर-उधर न हुए।

राजगृही निवासी बमार्ड कालमौकिक का पुत्र मुलस महामत्री भगवन्कुमार की संगति से अहिम और दृष्टमी बन गया। उसने निश्चय कर लिया कि वह कभी पशुवध नहीं करेगा।

मृत्यु के समय उसके पिता कालमौकिक ने अपने पास बुलाकर पूछा—  
‘बेटा ! मेरी एक इच्छा पूर्ण करोगे ?’ मुलस ने कहा—‘पिताजी ! अगर मेरे धर्म में यह बाधक न होगी तो मैं अवश्य पूर्ण करूँगा।’ कालमौकिक ने प्रसन्न होकर कहा—‘मेरी यह इच्छा है कि मेरी मृत्यु के बाद तुम पर के मुखिया बनो।’ मुलस ने उसे स्वीकार किया। कालमौकिक की मृत्यु के बाद मुलस को घर का मुखिया बनाने की रसम अदा की गई। इसी बीच कुलदेवी के सम्मुख एक भैंसा लडा करके उसका वध करने को कहा गया, परन्तु मुलस चुपचाप लडा रह गया, उसने लतवार ऊपर न उठाई। भुज्जों ने कहा—‘बेटा ! जो मुखिया बनना है, उसे देवी की प्रसन्न करने के लिए रक्तदान करना पड़ता है।’ मुलस बोला—‘अच्छा ऐसी बात है तो तो यह बहुर लमने अपने पैर पर लतवार चलाई, उससे रक्त का फव्वारा छूटा, पैर बटकर जमी हो गया।’ रोते हुए परिवारों ने कहा—‘मुलस ! तुमने यह क्या किया ? भैंसे पर लतवार बनाना था।’

मुलस बोला—‘जिसी भी पशुवशी का वध करता तो मेरे धर्म के विरुद्ध है, मैं बदाभि नहीं बन सकता। देवी का मैंने अपना रक्त दे दिया है। तब से मुलस की धर्म दृष्टता के कारण गारे परिवार में सदा के लिए पशुवध छन्द हो गया।

मत्स्यजान् से मत्स्यजीव पुण्य इनके दृष्टमी होने हैं कि वे प्राणों को छोड़ने के लिए तैयार होते हैं, पर स्वीकृत धर्म से विचलित होने की बदाभि तैयार नहीं होते। नीतिवार भट्टहरि ने मत्स्य ही कहा है—





ऐसे ही महाभक्त बनार में अपना नाग अंग बर जाने हैं, अपनी यज्ञ-सौरभ को वे दिग्-गिण में फैला देते हैं। हजारों मानवों को उनकी धर्मदृष्टता युगों युगों तक प्रेरणा देती रहती है। इगीतिगु पण्डितराज जगन्नाथ ने कहा—

“आपद्गत रामु महाशयचक्रवर्ती,  
विस्तारपर्यटनपूर्वमुगारभायम् ।  
जातागुह्यं हनमप्यगत समन्ता—  
स्वोक्तोत्तरं परिमर्चं प्रकटीकरोति ॥”

—“महाशयो में चक्रवर्ती सत्त्वशील पुरुष आपत में पड़ने पर भी अभूतपूर्व उदारभाव फैलाना है। जैसे जाना अंग भाग में डालने पर भी अपनी सोरोत्तर सुगन्ध चारों ओर फैलाना है, वैसे ही सत्त्वशील महानुभाव भी अपनी मोकोंत्तर यश-सौरभ फैलाना है।”

महासत्य अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते

ऐसे महामन्य दुजेनो के बीच में भी रहकर अपनी सज्जनता को नहीं छोड़ते। विरोधियों के बीच भी अपनी उत्तम प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। वे तुच्छ स्वाधियों या भ्रष्टानियों द्वारा चाटे घोर वृष्ट में डाल दिये जाएँ फिर भी वे अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। जैसा कि नीतिज्ञान कहते हैं—

“पृष्ट पृष्ट पुनरपि पुनरब्जदन्तचारदण्ड ।  
दण्ड दण्ड पुनरपि पुनः काचनं कान्तवर्णम् ।  
छिन्न छिन्न पुनरपि पुनः स्वादह चेषुदण्डम् ।  
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नीतमानाम् ॥”

जन्दन को चाटे बार-बार पिमा जाय, वह अपनी श्रेष्ठ सुगन्ध को नहीं छोड़ता, मोने को बान्धार आग में जलाया जाय तो भी वह अपने पीने-बमरीने रंग को नहीं छोड़ता, गन्ने चाटे टुकड़े टुकड़े कर दिये जाय, वह मधुर स्वाद देना नहीं छोड़ता। मच है, प्राणान्त का अवसर आ जाने पर भी उत्तम पुरुषों के स्वभाव में कोई रिवार नहीं आ जाता। अर्थात्—वे प्राणान्त वृष्ट आने पर भी अपने मूल स्वभाव को नहीं छोड़ते।

वासन में मूल स्वभाव ही धर्म है। अहिंसा आत्मा का मूल स्वभाव है, इसी प्रकार मन्द, रमानदारी, देव-मुर-धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा—वक्रादारी (निष्ठा) शील, आरिषह वृत्ति, दया, क्षमा, मन्तांग, कन्य, सेवा, दायित्व आदि आत्मा के मूल स्वभाव हैं, आत्मा के निरी गुण हैं, स्व-स्वभाव हैं। सत्त्वशील पुरुष इस प्रकार के आत्मस्वभाव रूप-धर्मों को कदापि नहीं छोड़ते।

एक कवि ने कहा है—

मिटनी सर आती है, सर झल को छाती नहीं ।  
आग में जल जाए सोना, पर धमक जाती नहीं ॥



था। आप भी मेरे पिता के समान हैं। आप भी के पुण्यप्रसाद और गन्धर्वपत्नी से मैं आज यह शुभ दिन देग मचा हूँ। मैं ही नहीं, मारा मारवाड आपका चिरकृणी रहेगा।"

महामन्त्र बड़ी से बड़ी बिपत्ति में पड़कर भी अपने धर्म से ध्युत नहीं होते।

महामन्त्री चन्दनबाबा दाभी के घर में घनाबह मेड के यहाँ रहती थी। अपना धर्मपालन करती हुई वह गुप्त से रहती थी। श्रेष्ठिपत्नी मूला की आँखों में चन्दना बाँटेजी सटकती थी। उसने एक दिन मौला पाकर चन्दना का गिर मुड़वा कर, एक बच्छा पहनाकर हाथ-पैरों में हृषिकेशिणी-वेदिनी हाथकर उठे अंधेरे सतघर में पटक दिया। तीन दिन तक उठे भूमी-प्यासी रगों। परन्तु चन्दनबाबा ने अपनी उत्तम प्रकृति से विवृत होने का परिचय नहीं दिया, बल्कि अपनी मानाजित मूला सेठानी का उपकार ही माना। वह अपने धर्म से जरा भी विचलित न हुई।

### इधर्मो किसे कहा जाए ?

इस सगार में अनेक प्रकार की शक्ति, प्रकृति और आस्था बाने मानव हैं, वे सभी एक या दूसरे प्रकार से धर्म (अहिंसा, सत्य, ईमानदारी आदि) का आचरण करते हैं, परन्तु हम सोचता है कि इनमें से इधर्मो कौन है ? जिसके जीवन में धर्म की नींव मुहद है ?

एक व्यक्ति है, वह इसलिए धर्म पर चलता है कि उसके सामने इस लोक और परलोक का भय है। उसमें कोई कहता है कि अपने व्यवसाय में तस्करी, चोर जाकारी, बेईमानी, गिस्ताबट, नापतोत से गडबडी अथवा चोरी, जाली, सटपाट आदि करने बुरी नहीं मानामास हो जाने ? क्या रस्ता है इस धर्म-बर्मे में ? हमने तो गृध्णारा पत्रिकार भूयो मरेगा।" वह उत्तर देता है—भाई ! बने तो धर्म-कर्म कुछ नहीं है, ये चोरी आदि जो कुछ भी मोघ घनवान बनने के उपाय हैं, उन्हें अजमाने का मत होना है। पर क्या कहें ? मन में डर है कि अगर बड़ी पकड़ा गया, तो बर्बाद हो जाऊँगा, इज्जत मिट्टी में मिल जाएगी। जेल में सड़ना पड़ेगा, भारी गजा भोगनी पड़ेगी। इसलिए गरबार और समाज का भय जो है। बड़ी मुझे ऐसे भयतर साहमिक बर्मे करने से रोकने और धर्म पर चलने का दाध्य करते हैं।" मतलब यह है, ऐसे व्यक्ति का जीवन सही सरकार और समाज के और परलोक में नरक के दण्ड के भय से धर्म पर चलता है। गहज धर्ममय जीवन नहीं है।

दूसरा व्यक्ति मित्ता है, उसने भी वह यही मकान पूछता है कि "भाई ! हमने दु ली क्यों हो रहे हो ? इस दुर्दशा से छुटकारा पाने के लिए चोरी एक यत्नीति के बर्पा क्यों नहीं कर लेते ? चोरी, तस्करी, बदमाशी, डाकेजनी, गिरहबडी आदि बुरी नहीं कर लेते ? वह कहता है—भाई ! मन में आता है कि ये सब काम करने अच्छी पूँजी दबट्टी कर लूँ, जिससे बुढ़ापे में मुल में खिन्गी बट सके। परन्तु आज समाज में मेरी जो इज्जत है, मुझे लोग ईमानदार कहते हैं, ईमानदार मुझ पर विश्वास



विन्नातुर राजा ने यह घोषणा कराई है कि जो पुरण इस बन्धा की सुजाती (मूत्रती) कर देगा, उसे वह आधा राज्य और बन्धा देगा। अनेक भत्ता-बुवाल लोग आए, परन्तु धर्म तब किसी की सफलता नहीं मिली। बल गवैरे तक अगर बन्धा आँखों से देखने में लगी तो राजा, रानी और बन्धा तीनों बिना में जल कर मर जाएँगे। अतः हमें प्रातः रात वहाँ जाना है। साय ही उम वृद्ध भारद्वाज ने जन्मान्ध को भी दिवने सग जाए, इसका उपाय बनाने हुए कहा—“देखो ! इस बट के स्कन्ध पर एक बेल निपटी हुई है, उसका रस, हमारी बिष्टा के मास्य मिलाकर अगर कोई अघे की आँख में डाले तो उसकी आँखों में एकादम रोगनी आ जाती है, वह देखने लगता है” यह बात सुनकर राजकुमार पहले तो अपने पर अजमा लेने के विचार में सब पक्षियों के सो जाने पर धीरे में उठा और उमने टटोलता-टटोलता बट के स्कन्ध के पास पहुँच कर उम डेल का रस भारद्वाज पक्षी की बीट के मास्य मिलाकर अपनी आँखों में डाला। यह डालने ही आँखों में एकादम रोगनी आ गई। कुमार हर्षित हुआ। धर्म पर उसकी आस्था और दृढ़ हो गई।

अब वह एक द्विबिधा में वह बेल और भारद्वाज की बीट दोनों लेकर चम्पा-नगरी पहुँचने के विचार में भारद्वाज पक्षी की पास में घुस गया। सुबह होते ही भारद्वाज पक्षी उठा, उमने राजकुमार को सत्कास चम्पानगरी में पहुँचा दिया। स्नानादि से निवृत्त होकर कुमार नगर के मुख्य द्वार पर पहुँचा तो वहाँ राजा की घोषणा अकित थी। उसे पत्रकर द्वाररक्षक के साथ राजा के पास बहनाया कि “एक विद्यासिद्ध आया है, वह राजकुमारी को दिव्य नेत्र दे सकता है।” राजा ने तुरन्त बुलाकर कुमार का बहुत स्वागत किया। सत्यश्वात राजा की प्रार्थना पर कुमार द्वारा उम दिव्योपधि का रस राजकुमारी की आँखों में डालते ही उसके दिव्यनेत्र खुल गये। राजा ने प्रमत्त होकर राजकुमारी के मास्य कुमार की शादी कर दी, उसे आधा राज्य भी सौंप दिया।

इधर मञ्जन के बहुत बुरे हाल थे। एक दिन मञ्जश में बैठे हुए राजकुमार ने उसे पटेहास लखलखाने हुए आने देखा। उसने शरीर में जगह-जगह फोटे फून्नी हो रहे थे। आँखों से पानी डार रहा था, पेट पीठ से चिरक गया था। यह देख करुणा-शील सतिताम ने उसे बुलाया, अपना परिचय देकर उसे नहला-धुलाकर नये कपड़े पहनाए और अपने पास सुवपूर्वक रहने को कहा।

“एक दिन मञ्जन से कुमार ने ऐसे बुरे हाल होने का कारण पूछा तो उमने कहा—आरबी अनेके छोड़कर मैं आने बड़ा ही था कि रास्ते में खोर मिले। उन्होंने मेरा सर्वस्व छीन लिया, मुझे मारपीट कर अधमरा कर दिया। मैंने पार का पत्र पा लिया। अब मुझे छोड़ो।” परन्तु कुमार ने दया करके उसे आश्वानन देकर रखा। एक दिन सतिताम की रानी ने उसे मञ्जन की सगति करने से रोका। परन्तु सतिताम मरनभाव से उसकी संपर्क करता रहा।

एक दिन राजा ने पापी मञ्जन में पूछा—यह राजकुमार कौन है ? तुम्हारे



भोजन आपको खिलाता है। दीवानत्री जैन होने के नाते माँग तो गिवा नहीं मगने थे। इसलिए मिठाई का घान मेहर केर के गिजरे के सामने पहुँचे। गिह ने पहुँचे तो मुह फिरा लिया, मिठाई देगकर। दीवान साहब ने गिह में कहा—“मार्द ! मैं तुम्हें दूध, मिठाई या रोटी आदि के गिवाय और कोई हिगा मे निगपत्र वस्तु दे नहीं मगता। इसलिए या तो उगे ग्दीकार करो, या फिर मेरा माँग स्वीकार करो। दूसरे किसी पशु का माँग मैं गही दे मगता।” कहते हैं, बुद्धिमान गिह मोघ्र ही मिठाई गाने लगा। यह दीवानत्री के अहिगा धर्म पर दृढ़ रहने का समतार था।

एक जैन व्यापारी के पुत्र ने किसी को रजम देनी थी तो बहीखानो में गडबड करके वह बिलकुल निवाल दी। साहूकार ने मुकद्दमा दापर लिया। ग्यायाधीन के समक्ष गव बहियाँ पेश की गयीं। बहियों में तो कोई बजें लेने का उल्लेख नक न था। प्रतिपक्षी के बकील ने कहा—“साहब ! इस व्यापारी का पिता मत्पवादी है, वह अगर वह दे कि मेरे मवविजय मे इसने कुछ भी रुपये नहीं लिये हैं तो मैं मुकद्दमा वागिस लेने को तैयार हूँ।” ग्यायाधीन ने उनके पिता को बुलवाने का निश्चय लिया। इधर बजेंदार व्यापारी ने अपने पिता से बहुत अनुनय-विनय की, झूठ बोलकर अपने को बचाने की। अगर मत्प धर्म पर दृढ़ पिता डग बाल के लिए कतई तैयार न हुआ। आन्तरि उनके पिता ने ग्यायाधीन के सामने मच-मच बयान दिये। बजेंदार प्रतिपक्षी उगका पुत्र हार गया। फिर उसके मत्पवादी पिता ने अपने पुत्र को आजीवन करावाय की मज्रा के बदले उने भविष्य में कभी ऐसा अमत्पवाचरण न करने की प्रतिज्ञा दिला कर बहुत बम सजा मे छुटकारा दिलाया।

शील के विषय में सेठ गुदगंन की धर्म दुकना का ज्वलन्त उदाहरण है। ईमान-दारी के विषय में दुकना का एक ज्वलन्त उदाहरण है, फत्तोदि चाने सेठ पद्मचन्द जी काँवर का। अहमदाबाद में नवामागपुरा में इनकी होल्सेल करडे की दुकान है। फर्म का नाम है—‘सरदारमल पावुदान’। यह दुकान अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध है। एक बार इन्कमटैक्स के अधिकारियों ने मेठजी की फर्म का टैक्स कम आया। सेठजी के ह्दात में यह बात आने ही उन्होंने इन्कमटैक्स विभाग के कामचारियों को बुलाकर बताया कि मेरी फर्म का टैक्स कम आया गया है, इसकी जाँच करें।” उन्होंने जाँच की तो भ्रूज निकली। अतः मेठजी ने दाकी का इन्कमटैक्स और भी दिया। तब से मेठजी की प्रसिद्धा इनकी बढ़ी कि इन्कमटैक्स वाले उनकी फर्म की बहियाँ नहीं देगने। सेठजी जिनकी इन्कम वता देने उनकी के मान लेते।

मात्रवन्ध ने गन्धाम सेते समय अपनी दो पलियों में धन बाँटना चाहा तो मैनेयी ने साफ कह दिया—जिस धन की लेकर मैं अमर नहीं हो मगती, उसे मेहर कहा कहूँगी ? मुझे तो यह आग धर्मरणी धन दीजिए, जिसमे मैं अमरत्व प्राप्त कर सकूँ।” मचमुच धर्म की प्राप्ति करने के लिए धन का प्रलोभन टुकमना बहुत बड़ी बात है।





## बान्धव वे, जो विपदा में साथी

प्रथम मातृमहन्धुओ ।

आज मैं आपके समक्ष ऐसे जीवन की सीमांसा करता चाहता हूँ, जो आपत्ति, दुःख में, पीड़ा में मानव का साथ दे। मानव, चाहे वह परिवर्तित हो या अपरिवर्तित, लुप्त रहा हो, या दुर्गति, व्यसनही हो या निर्व्यसनी, अपने धर्ममन्त्रप्रदाय का हो या अन्य धर्ममन्त्रप्रदाय का हो, अपनी जाति-कौम का हो या दूसरी जाति-कौम का हो, अपने देश या प्रान्त का हो या दूसरे देश या प्रान्त का हो, अपने गाँव-नगर का हो या अन्य ग्राम-नगर का हो, कोई भी मानव हो, अगर वह विपत्ति में है, असहाय है, दुःखी है, पीड़ित है, रण्य है, या किसी भी दृष्टि से व्यथित-चिन्तित है और वह पुकार कर रहा है, कराह रहा है, दयनीय स्थिति में है, उस मानव को जो उस समय सहायता देना है, उसकी पीड़ा को दूर करने के लिए प्रयत्न करता है, वही बान्धव है, वही बन्धु है, वही सहायतादाता है और आपत्तनाता है। इसीलिए गौतमकुलक ने हमका जीवन सूत्र बताया गया है—

‘ते बधवा, जे वसणे हुं वनि’

—बान्धव वे ही हैं, जो दुःख और विपत्ति में सहायक हो।

बान्धव की आवश्यकता क्यों ?

प्रत्येक मनुष्य प्रायः अपने परिवार के सांनिध्य में ही जन्म लेता है, किसी का परिवार छोटा-सा—बेवत्त एव या दो सदस्यों का होता है और किसी का बड़ा होता है। परिवार से वह सुरक्षा और उपकार की आशा रखता है। समय आने पर परिवार मनुष्य की बड़े न बड़े सबट में रक्षा करता है, उसे सहायता देता है। परिवार का निःस्वार्थ प्रेम ही परस्पर सहयोग और सहायता के लिए एक दूसरे को प्रेरित करता है। परन्तु कई बार परिवार एकादम छोटा होता है, या परिवार में कोई बच्चा मरना नहीं होता, या परिवार में महिलाएँ रण्य, अशक्त, बुद्ध या घनीपात्र बनने योग्य नहीं होती, बच्चे छोटे होते हैं, अबाध सबको पर कोई आजीविका का भार नहीं ढाला जाता, अथवा परिवार में दो ही सदस्य हैं, पिता और बच्चा या माता और बच्चा; ऐसे समय में बीमार रिता या बीमार भाँ को दूसरे की सहायता



वहाँ—आओ बहन ! मैं तुम्हारा बन्धु बनना हूँ । तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारे धर्म-जीवन की रक्षा करूँगा और तुम्हारे गुरी जीवन यापन की भी व्यवस्था करूँगा । इनमें से ऐसा कोई भाई नहीं दिखाई देता, जो तुम्हारा उद्धार कर सके ।”

उस नारी की आँखें कृतज्ञता में सजल हो गयी । उसे सम्राट् बन्धुदत्त बन्धु के रूप में मिन गए, जिसे उसकी आँखें ढूँढ़ रही थीं ।

हाँ तो मैं कह रहा था कि इस संसार में स्वार्थी पति-पुत्र तो बहुत मिलते हैं, जिनसे आपन और संबन्ध के समय कोई गहायना नहीं मिलेगी, मगर बन्धु बहुत बिरले मिलते हैं, जिनमें हम संसाररूपी भयंकर वन को पार करते समय मदद मिल सके, जो परम्पर सहायक होकर एक-दूसरे का बोझ हलका कर सके ।

आप और हम मान्ति-गण के पक्षिक हैं । इस प्रमाण में क्या आपको ऐसे बन्धु की अपेक्षा नहीं रहती जो जाति, धर्म निधन-धनिक, निर्बल-सबल आदि का भेदभाव भूलकर प्रेम से आपसे सामने विपत्ति के समय सहयोग का हाथ बढ़ा सके, बन्धुभाव बना सके ।

### यों तो आत्मा ही आत्मा का बन्धु है

जैसे अगर दीर्घदृष्टि में सोचा जाए तो जीवनयात्रा में आत्मा के सिवाय हमारा कोई बन्धु नहीं है । आप जानते हैं कि प्रत्येक प्राणी विभिन्न योनियों और यनियों में अनन्त अनन्तकाल में यात्रा करता चला आ रहा है । उसकी इस यात्रा में उसे अपने जन्मों के अनुसार अनेक प्रकार के दुःख और यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं । ऐसी स्थिति में उस प्राणी की आत्मा के सिवाय और कोई बन्धु साथ में नहीं रहता । शरीर, मन, अंगोपांग आदि भी तभी तक साथ रहते हैं, जब तक उस प्राणी का आयुष्य है । आयुष्य समाप्त होने ही से एक क्षण भी नहीं रहते । अन्य साथी भी दुःख एवं यातनाएँ भोगते समय प्रायः बहून ही बिरले होते हैं, जो आपके दुःख भोगने में मदद करते हों । नरक गति नियंत्रण गति और देवगति में तो वहाँ के जीवों को अपने दुःख स्वयं ही भोगने पड़ते हैं । नरक में कोई दुःख और आपत्त के समय बचाने नहीं आता, देवलोके में भी परिवार व्यवस्था या समाज व्यवस्था प्रायः नहीं है, वहाँ भी स्वयं ही दुःख भोग करना होता है । तिर्यञ्चों में एकेन्द्रिय से पतुरिन्द्रिय जीवों तक में कोई दुःखभोग में सहभागी नहीं होता । पञ्चेन्द्रिय जीवों में भी जिन जीवों में शृङ्खलाधर रहने की आदत होती है, वे सब के समय कदाचिन् किसी के मददगार हो जाते हैं, परन्तु प्राकृतिक प्रकोपों के समय अक्सर वे मूक और साधारण बन कर अकेले-अकेले दुःख और पीड़ा भोगते हैं । रही बात मनुष्य की । मनुष्य परिवार, समाज और राष्ट्र आदि इमीनिए बनाता है कि सब के समय एक दूसरे को गहायना दे सके । परन्तु कई अवसरों पर मनुष्य भी दूसरे मनुष्य के बन्धु और पीड़ा में हाथ नहीं बँटा सकता । जैसे किसी को कोई बीमारी है । बीमारी की हालत में परिवार समाज एवं राष्ट्र कामे उसे दवा दे सकते हैं, वैद्य, डाक्टर आदि की



है ? माधु-माधवी भी घर-बार, परिवार या सामारिक रिश्ते-नाते को छोड़ कर एक विनाश मानव कुटुम्ब के बन जाते हैं, वहाँ भी वे मग्न बनाने हैं, उनमें उनके परस्पर सहायक गुरुधारा या गुरुमहिनी होने हैं। वहाँ भी उनके तब तक उन पारमार्थिक बन्धु-बान्धुओं या अनुयायियों की अपेक्षा रहती है, जब तक वे उच्च कथा या उच्च गुणध्यान की भूमिका पर आरुढ़ न हो जाएँ।

एक बार महात्मा ईसा बहुत-से त्रिज्ञानुओं से घिरे हुए उन्हें उपदेश दे रहे थे। सभी किसी ने आकर उनसे कहा—“आपके भाई और माता वहाँ बाहर खड़े हैं, आपसे वे जान करना चाहते हैं। आप जानर उनसे मिल लीजिए।” ईशानसीह बहुत ही साधारण भाव से यह उत्तर देकर अपने उपदेश में लग गए—“संसार में मेरा भाई और मेरी माता अन्य कोई नहीं, यही त्रिज्ञानु जनता ही मेरे बन्धु-बान्धव और मेरी माता है। क्योंकि जो मेरे स्वर्गीय पिता के आदेश पर चले, वही मेरा भाई-बन्धु, बहुत या माता-पिता हैं। मैं परमात्मा के आदेशों का पालन करने वाले को ही बन्धु-बान्धव मानता हूँ।”

आध्यात्मिक दृष्टि में ब्रान्धव कौन ?

आध्यात्मिक दृष्टि में आत्मा के ६ गुण ही साधक के बन्धु-बान्धव हैं। एक बार एक आध्यात्मसाधक से किसी त्रिज्ञानु ने पूछा—आपके बान्धव कौन हैं ? आप घर-बार, कुटुम्ब-बन्धुमा, समाज, जाति आदि सब सामारिक सम्बन्धों को छोड़ कर साधु बन गए हैं। आपके पास पैसा भी नहीं, नौकर चाकर भी कोई नहीं है, जो आपको सेवा कर सकें और न ही सफट में आपको रक्षा करने वाले कोई रक्षक हैं, फिर बिना बन्धु-बान्धव के आप समाज में गुण से कैसे जी सकेंगे ?” उस मस्त साधक ने अपनी मस्ती में उत्तर दिया—

‘सत्य माता पिता ज्ञानं, धर्मो छात्रा, दया सखा ।

शान्ति पत्नी, क्षमा पुत्र, पढ़ेंते मम बान्धवा ॥”

—“सत्यता मेरी माता है, ज्ञान मेरा पिता है, धर्म भाई है, दया सखा है, शान्ति पत्नी है और क्षमा पुत्र है, ये छह मेरे बान्धव हैं, जो हर सफट में, बाट में मेरा साथ देने हैं, मेरी सहायता करने हैं।”

स्वामी रामतीर्थ जिम स्टोमर में विदेश यात्रा कर रहे थे, जब बन्दरगाह पर जहाज खड़ा हुआ, सभी यात्री उतर रहे थे, तब वे खड़े थे। एक विदेशी यात्री ने साश्चर्य पूछा—“अरे ! आपके पास तो कुछ सामान ही नहीं है। मालूम होता है, पैसों भी आपके पास नहीं रहे हैं। इस समय आपको कौन सहायता करेगा ?” स्वामी रामतीर्थ ने वैदेशन की भाषा में उत्तर दिया—“आप ही मेरे बन्धु हैं, जो मुझे सहायता के लिए पूछ रहे हैं ? आप मे सहायता नही, इसलिए आपसे बढ़कर मेरा इस समय बान्धव और कौन होगा ?” बस, इतना कहना था कि वह विदेशी स्वामीजी का बान्धव बन गया। उसने स्वामी के आवासादि की ध्वनियों से ही, उनके



मैंने एक जगह मुई पासपर की गम्भीर देखी। उसके नीचे एक बावप लिखा था—“मैं आपका धर्म, जाति या देश आदि नहीं जानना चाहता। मैं तो गिरफ्त आपकी पीछा दूर करना चाहता हूँ।” वास्तव में जो किसी भी भेदभाव या संकीर्णता के बिना नेत्रों दुःख और विपत्ति में पड़े हुए की पीछा दूर करना चाहता है, वही बान्धव है। जो सुगमोग करने में तो सबसे पहले रहे और दुःख के समय दिनारा बसो कर ले, वह बन्धु की आँट में धनु है। इसीलिए बन्धु और अवन्धु का अन्तर बनाने हुए स्पष्ट कहा है—

‘स बन्धुर्घो विपन्नानामपदुद्धरणक्षमः।

न तु भीत-परित्राण-वतूनालम्भपण्डितः॥”

—“बन्धु वह है, जो विपत्ति में पड़े हुए लोगों का विपत्ति में उद्धार करने में समर्थ हो, वह बन्धु नहीं है, जो भय में परित्राण पाने की अपेक्षा हो, वही तरह-तरह से उपालम्भ देने में पण्डित हो।”

कई लोगों की आदत होती है कि वे किसी नदी या तालाब में डूब जाने पर तीरे में गमर्ष होने हुए भी उसे बाहर निकालकर रक्षा नहीं करते, उसे मंकाट से उबारा नहीं, और लगते हैं—उलाहना देने-पहले मैंने तुम्हें जितना मना किया था कि तुम नदी या तालाब में अन्दर मत घुसो, डूबकी मत लगाओ, अब भोगो अपने कर्माँ का फल !”

वास्तव में ऐसे लोग जो विपत्ति में पड़े हुए को केवल उपदेश दे देते हैं, या केवल मित्रके पंख देने हैं उसके गमने के सच्चे अपों में बान्धव नहीं है, वे केवल ऊपर ऊपर से सहानुभूति बनाकर रश्म अदा कर देते हैं। जैसे कई लोग किसी मृत व्यक्ति के यहाँ उसके परिवार वालों के प्रति शोक—सुवेदना व्यक्त करने जाते हैं, वे मौखिक रूप में प्रायः अफसोस प्रगट करके आ जाते हैं। मृतक की पत्नी, या उसके भाई आदि को वे हृदय से प्राय आशवासन या सात्त्वना नहीं देते। वे मृतक के पीछे दुखी या पीड़ित सम्बन्धी को साफ-साफ सात्त्वना या सत्रिय सहायता नहीं देते कि बन्धुवर ! या बहन ! वह मर गया तो क्या हुआ, मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम चिन्ता न करो। मैं तुम्हारा ही एक छोटा-सा बन्धु हूँ। तो मेरी यह सहायता स्वीकारो !”

एक बार एक ऊँट पर बैठकर एक पण्डितजी और सेठजी कही जा रहे थे। मारवाड़ का रेतीला प्रदेश था। भयकर सूखन रही थी। इस भयकर गर्मी से गरीब मानव झुलम कर लग्न हो जाते हैं। रास्ते में एक जगह एक बीमार ब्रिसे लु लग गयी थी, पड़ा-पड़ा कराह रहा था। उसे किसी ऐसे बन्धु की आश्रयता थी, जो उसे निश्चयनी हॉस्पिटल में ले जाकर उसकी चिकित्सा करा दें। सबसे पहले पण्डितजी की दृष्टि उस पर पड़ी, उनके हृदय में कुछ सहानुभूति जगी। वे ऊँट को रोबकर नीचे उतारे और रोटी के पास जाकर लगे उपदेश श्रावने—“भाई ! अब रोना बसो





विश्व-बन्धुत्व का दायरा इतना विशाल होने हुए भी मनुष्य उस बन्धुत्व को सर्वोप-अनिमोषी दायरे में बन्द कर देता है, वही परिवार के दायरे में, तो कभी जाति, प्रान्त, मगर, गाँव या राष्ट्र के दायरे में। इसलिए बान्धव की पहिचान कराने हुए नीतिवार कुछ नाम विपक्ष स्थानों का उल्लेख करते हैं—

“उत्तमे ध्यमाने दुष्टे दुर्मिते राष्ट्रविल्लभे ।

राजद्वारे शमशाने च मस्तिष्कति स बान्धवः ।

—धार्मिक या सामाजिक उत्तमों के अवसरों पर जो सम्मिलित होता है या वही की व्यवस्था में भाग लेता है, अपनी सेवाएँ देता है, आफन या कष्ट पड़ने पर जो सब तरह में सहायता, सहायता देता है, गुड या सड़ाई के समय जो मदद देता है, दुर्काल के समय पीड़ित व्यक्तियों की सहायता देता है, राष्ट्र में विद्रोह या विप्लव होने पर जो अपना सर्वश्रेष्ठ शोक देता है, राजदरबार में भी जो दूषित व्यक्ति का साथी बनता है, शमशान में जो मृत व्यक्ति के पीछे परिवार की आज्ञामान देता है, वही वास्तव में बान्धव है ।

ये सब स्थान बान्धव की परखने के हैं । इन क्षेत्रों में जो किसी व्यक्ति के साथ रहता है, बन्धुत्व को लेकर किसी घायल के पावों पर भरहमपट्टी करता है, वही वास्तव में बन्धु-बान्धव है । एक उर्लू शायर ‘नश्नर’ ने मानव जाति की सभ्यता की निशानी बन्धुता को बताया है—

यह है सहजीब<sup>१</sup> आदमी में हो हया ।

बिल में हर सहजा<sup>२</sup> रहे लोफेकबा<sup>३</sup>

जोने का सकसद<sup>४</sup> हो सिदमत<sup>५</sup> सत्क<sup>६</sup> की ।

आदमी के काम आए आदमी ॥

महासती सीता को जब श्रीराम ने घोर वन में पहुँचा दिया, तब अनेसी, अनहाय और दुःख पीड़ित सीता का कोई भी सहायक नहीं था । फिर भी सीता ने आत्मविश्वास रखकर उस घोर वन में अपने आप की प्रकृति के भरपूर छोड़ दिया । अचानक वहाँ बख्श राजा आ पहुँचे । उन्होंने एकाकी सीता को इस प्रकार विपन्न अवस्था में देखा तो उनका हृदय भर आया । वे स्वयं बन्धु बनकर सीता को अपने यहाँ ले गए और सब प्रकार से कष्ट-निवारण किया ।

दुर्कालपीड़ित मानवों के बन्धु . सेमाशाह

जब पृथ्वी पर कोई प्राकृतिक प्रकोप—भूकम्प, बाढ़, दुर्काल, सूखा या महामारी आदि विपत्ति के रूप में होता है तो उस समय अपने देश या प्रान्त के सिवाय दूसरे देश या प्रान्त के लोगों में भी पीड़ितों के बान्धव बनने की अपेक्षा रही

१ सभ्यता । २ प्रत्येक क्षण । ३ परमात्मा का डर ।

४ उद्देश्य । ५ सेवा । ६ जनता की ।



माश, दोनों के आश्रय स्थानों का सर्वनाश और भग्नि-ज्वालाएँ मुक्त से देती नहीं जानीं।" आगिर सेठ की स्वीकृति पर हमीद साँ ने रणभेरी बजा कर सेना की बागिस सौटाई। सारे शहर में शान्ति हो गई। पर उम शान्ति का मूल्य नगर सेठ की अपनी पीड़ियों ने बर्माई हुई सर्वस्व सम्पत्ति देकर चुकाना पड़ा। नगर सेठ ने मन्नोद की गाम सो कि पैसा भरे ही चला गया, नगर तो बच गया। नगर बन्धु सेठ गुणाधचन्द की इम निःस्वार्थ बन्धुता और उदारता की जितनी प्रशंसा की जाए, योही है।

जैसे शरीर के किसी अंग में पीड़ा होनी है तो मारा ही शरीर बेचैन हो जाता है। पैर में थोड़ा लगनी है तो आँखों में आँसू आ जाते हैं, हाथ उम थोड़ा को दूर करने के लिए प्रयत्न करने लगते हैं, मस्तिष्क को विन्ता होता है, उसी प्रकार जिसके जीवन में बन्धुता आ जाती है, वह समाज के किसी भी अंग की पीड़ा में बेचैन हो उठता है। यही आत्मभाव का विस्तार है, जो बन्धु में होता है।

### पारिवारिक जीवन में बन्धुता

कई बार भाई-भाई दोनों पारिवारिक जीवन में भी बन्धुता नहीं निभा पाते। परन्तु जिसके हृदय में बन्धुभाव रहता है, वह अपचार करने पर भी अपने भाई को प्रेम से गुथारने का प्रयत्न करता है। एक प्राचीन उदाहरण लीजिए—

मगध देश में महात्म्य गाँव के मिहू और वसंत दोनों सहोदर भाइयों में अत्यधिक स्नेह था। एव के बिना दूसरा रह नहीं सकता था। परन्तु छोटे भाई वसंत की पत्नी उन्हें बार-बार बड़े भाई-भाभी की झूठी निन्दा करके उत्तेजित करने लगी। कई बार बड़े भाई मिहू ने उसे स्नेहपूर्वक समझाया, जिससे वह पुनः स्वस्थ हो जाता।

एक दिन उमकी पत्नी ने इतने बान भरे कि वह उत्तेजित होकर बड़े भाई के पाम पहुँचा और अड़ कर बैठ गया—“भाज तो मैं अपना हिस्सा लेकर ही उठूँगा।”

बड़े भाई ने बहुत समझाने पर भी नहीं माना, तब बिगड़ होकर उमने सम्पत्ति का आधा हिस्सा छोटे भाई को दे दिया।

परन्तु ऐसे व्यक्ति के पाम लक्ष्मी कहाँ टिकती? उसने मारा धन पूँक दिया। फिर भी बड़े भाई ने उसे और धन दिया। लेकिन बार-बार वह धन गो देता और बड़ा-भाई उसे फिर अपनी सम्पत्ति में से कुछ दे देता।

एक दिन अन्नवी एव अचर्मण्य छोटा भाई बड़े भाई मिहू पर धूम से हंगामा करने लगा। बड़े भाई ने उस प्रहार से तौ बचा लिया करने को। लेकिन उसे स्थायी गमार में विरक्ति हो गई। एक अध्यात्म-साधक मुनि ने उमने दीक्षा ले ली। छोटे भाई कर्म ने भी साधन दीक्षा ले ली। दोनों कई जगों तक एक दूसरे के सम्पर्क में



क्या सम्पन्न लोग अपनी सम्पत्ति परलोक में साथ ले जाएँगे ? यदि नहीं तो, ऐसे निर्धन एवं बेरोजगार साधर्मों बन्धु को आफन में या मकट में देख कर क्या आप में साधर्मोबन्धुता नहीं जागती ?

भारवाड के एक जैन धनिक का हैदराबाद स्टेट के एक शहर में व्यवसाय था। उनकी शुभकामना थी—राजस्थान के कुछ बेरोजगार जैन भाईयो को यहाँ लाकर उन्हें सहाय्य दिया जाए। फलतः राजस्थान से जो भी बेरोजगार स्वधर्मो बन्धु आता, उसे उसकी रीति के अनुसार कपड़ा, किराना, अनाज आदि की वे दूकान करा देते। अपनी ओर से वे उनकी ५००-७०० की मदद कर देते। उसमें बहुते-देनो, यह धंधा करो। इनमें जो कुछ भी बचाई हो, उसका अमुक हिस्सा हमें दे देना बाकी सब तुम्हारा है। दो-तीन साल में जब उनकी दूकान जम जाती तो अपना हिस्सा और रुपये निजान लेते, और उसे स्वतन्त्र रूप से अपना व्यवसाय करने देते। यों लगभग १५० परिवारों को उक्त मेठ ने बसाया, रोजगार धन्धे से उन्हें लगाया और अपनी स्वधर्मोबन्धुता सिद्ध की।

किसी ध्याति में स्वजातिबन्धुता या किसी एक जाति के प्रति बन्धुता होती है। जैसे नीग्रोनेता मार्टिन लूथर किंग ने नीग्रो जाति को सम्मानित और प्रतिष्ठित करने और उनके अधिकार दिलाने में अपने प्राणों की बाजी लगा दी। लोग उन्हें मारने-पीटते, गाली देने, पर वे अपने अहिंसा धर्म पर दृढ़ रहकर लुभी-लुगी सहन करते।

बंगाल के फरीदपुर के महाप्रभु जगद्बन्धु ने सूना और डोम जैसी अप्रसूय और पददलित जातियों को गले लगाकर एक दिन में दुराचारी से सदाचारी बना दिये। वे विद्यापियों को मञ्चरिज बनने की शिक्षा देते थे।

### कुष्ठरोगियों के बन्धु : मनोहर दिवाण

कुष्ठरोग एक भयानक रोग है। कोढ़ का रोग जब लग जाता है तो उसके घरवाले उसे घर में निजान देने हैं, समाज में कोई भी उसे पाग बैठने नहीं देता, उसकी छाया से भी पूजा करते हैं। किन्तु मनोहर कुन्दन दीवाण ने गांधीजी से प्रेरणा पाकर बर्षों के पास दसपुर में एक कुष्ठ-आश्रम खोला, जिसमें रहकर वे स्वयं कुष्ठरोगियों की सेवा करने लगे।

गवमुच ऐसे बन्धु मंगार में मिलने बैठते हैं।

### असहाय महिलाओं के बन्धु—महायि कर्वे

समाज में कई विधवाएँ अनाथ एवं असहाय, स्वतन्त्र एवं अनाथ महिलाएँ हैं, जिनके पास आजीविका का कोई साधन नहीं होता। उन दु गिन-पीड़ित महिलाओं के आँगू पोंछना वारनर में बहुत बड़ी बन्धुता का कार्य है। इन कार्य में वे ही हाथ डालते हैं, जिनमें समाज के द्वारा मिलने वाली मातृपै, आनोचनाएँ, सहने की हिम्मत हो।



## क्रोधीजन सुख नहीं पाते

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

आज आपके सामने एक विशिष्ट एवं निरुद्ध जीवन का चित्र उपस्थित कर रहा हूँ। अब तक १० जीवन सूत्रों पर मैं प्रवचन कर चुका हूँ। आज ११ वें जीवन सूत्र पर विम्वृत विवेचन करना चाहता हूँ। यह जीवन सूत्र है—

**‘क्रोधाभिभूया न मुहं सहति’**

क्रोध मे पराजित व्यक्ति सुख नहीं पाते। अर्थात् क्रोधी जीवन सुखी जीवन नहीं है।

**क्रोधी का सुख कपूर की तरह**

मनुष्य चाहे जितना धनमम्पन्न हो, विद्या और बुद्धि में प्रगतिशील हो, सन्तानसुविधाओं से भी परिपूर्ण हो, धर्मत्रिप्राणें भी करता हो, उसमें अहिंसा-सत्य आदि अन्य चाहे जितने गुण हो, नित्य-नियम, जप, माला, तप आदि चाहे जितना करता हो, शरीर भी सुन्दर और स्वस्थ हो, परिवार भी चाहे जितना अच्छा मिला हो, रहने के लिए सुविधाजनक मकान हो, व्यवसाय भी अच्छा चलता हो, परन्तु यदि उसमें क्रोध की आदत है, तो वह इन सब गुणों और सुखों का ह्रास कर देता है। क्रोध रूपी अग्नि मुखरुणी मूढ़ को जला डालती है। क्रोधी व्यक्ति के जीवन में जो भी थोड़ा बहुत सुख प्राप्त है, वह भी क्रोधावेश के कारण कपूर की तरह उड़ जाता है। एक व्यक्ति अपने परिवारवालों को बहुत सेवा करता है, धन उपार्जन के लिए मेहनत भी मच करता है अथवा घर का कार्य भी बहुत दिनचर्या से करता है, परन्तु जब उसके शरीर में क्रोधाक्षी विषाक्त प्रविष्ट हो जाता है, तब वह क्रोध के आवेश में पागल हो जाता है, जैसे कि एक पाश्चात्य विचारक ने कहा है—

**‘Anger is madness of mind’**

**‘क्रोध मन का पागलपन है।’**

जैसे पागल आदमी को अपने हिताहित का भान नहीं रहता, वह किसी को चाहे जो कुछ कह देता है, समीप्रकार क्रोधी भी अपने बुजुर्गों और महान् पुरुषों को भी क्रोधावेश में चाहे कुछ कह देता है, उनका अविनय कर देता है, उनकी कोई अदब नहीं रखता।





व्यसन पूरा बिये बिना हटता नहीं, उमका व्यसन पूरा ही होना चाहिए। डॉक्टरों का कहना है कि अधिक क्रोध करने से मस्तिष्क में रंज हुए ज्ञानतन्तु पट जाते हैं।

आकमपोर्ड यूनीवर्सिटी के मेडिकल निरीक्षक डॉ० हेमनबर्ग ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि क्रोध के कारण दम वर्ष परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों में अधिकांश बिड़बिड़े मिजाज के थे। पागलपाने की रिपोर्ट में बताया है कि क्रोध से उत्पन्न होने वाले मस्तिष्क रोगों ने अनेकों को पागल बना दिया। देखिए क्रोधी मानव शराब पीये हुए मनुष्य की तरह क्या-क्या करता है—

“रागं तसोर्वपुषि कम्पमनेकहपं,  
चित्ते विवेकरहितानि च चिन्तितानि ।  
धुमाममागंगमनं समदुःखज्ञानं,  
कोपं करोति सहसा मदिरामदश्च ॥”

क्रोध करने वाले पुरुष की आँखें लाल हो जाती हैं, उसके शरीर में अनेक प्रकार का कंपन होता है, चित्त में विवेकरहित चिन्तन करता रहता है, उन्माद पर जाने लगता है, एक साथ क्रोधी पर अनेक दुःख आ पड़ते हैं। मदिरा पीकर उन्मत्त बने हुए की तरह क्रोधी भी उन्मत्त हो जाता है। वह भान ही भूल जाता है कि मैं क्या कर रहा हूँ।

जॉन वेबस्टर (John Webster) कहता है—

“There is not in nature a thing that makes a man so deformed so beastly, as doth intemperate anger”

“प्रकृति की कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो मनुष्य को इतना विरूप, इतना पाशविक बना दे, जितना कि अनियन्त्रित क्रोध बना देता है।”

क्रोधावेश में आकर मनुष्य अपनी बड़ी से बड़ी हानि कर बैठता है।

पहाड़गढ़ दिल्ली के निक्टवर्ती एक मोहल्ले में एक व्यक्ति को बिट्फण्ड से १००) रुपये मिले। वह मो रुपये का नोट लेकर घर आया। उसने नोट साफ़ खाट पर रखा और कुछ काम में लग गया। इतने में उसका एक-दो वर्ष का बच्चा खेलता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसने सौ रुपये के नोट को सिलौना समझकर उठा लिया और मुँह में लेकर फाड़ दिया, जैसा कि छोटे बच्चे किया करते हैं। सौ रुपये के नोट को फाड़ने ही उस मनुष्य ने क्रोध में आकर अपना विवेक खो दिया। तत्काल उसने भोले बच्चे को उठाकर जलते हुए तन्दूर में पटक दिया था, जिससे बच्चा तत्काल मर गया। हाय रे क्रोध ! तू कितना अनर्पकर है ! पड़ोसी लोगों ने उस व्यक्ति की बहुत मारतना की और मरम्मत की। पुलिस उसे गिरफ्तार कर ले गयी।

वास्तव में क्रोध महाभयंकर रोग है। ऐसी महाप्याधि से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। जिनहे क्रोध की बीमारी नहीं लगी है, उन्हें इससे दूर हो रहना चाहिए और



चाहिए। उगमे दूर रहना चाहिए। जिन प्रकार चाण्डाल गन्दा होता है, इसी प्रकार बोधीक्षणी चाण्डाल मन का गन्दा होता है, वह अनेक दुर्गुणों से घिरा होता है। देखिए मनुस्मृति (७/६८) में बोध में पैदा होने वाले ८ व्यसन बताये हैं—

“वेगुण्यं साहसं श्रोतृमीर्ष्याभ्रुपार्श्वदूषणम् ।

वादशब्दश्च वारप्य बोधजोऽपि गणोऽटक् ॥”

(१) चुपत्ती, (२) दुःगाहम, (३) घैर, (४) जलन, (५) दूसरे के गुणों में दोषदर्शन, (६) अयोग्य धन का लेन-देन, (७) बढोर बषन, (८) क्रूरता का बताव। ये ८ व्यसन बोध में उत्पन्न होने हैं। बोध चाण्डाल जिनमें आ जाता है, वह सम्यग्-मार्ग में आदरणीय नहीं बनता। उसका पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। बोधी आदमी का हर जगह से बहिष्कार होता है। अन. जिसके घर में बोध उपन रहा है, बोध जनित दुर्गुण पुत्र हुए हैं, वह चाण्डाल है।

चिमनराय पण्डित नदी से नहा कर आ रहा था। मार्ग में वह एक चाण्डालिन में छू गया। बस, एक ही क्षण में बोध में वह आगबबूला हो उठा। उसकी आँखें लाल हो गईं। वह चाण्डालिन पर धरम पड़ा। चाण्डालिन कुछ देर मुनती रही। फिर भी चिमनराय का बोध शान्त न हुआ। लोग इकट्ठे हो गये। चाण्डालिन ने निकट आकर चिमनराय का हाथ पकड़ लिया। लोगों ने उसे टोका—तुमने इनका हाथ क्यों पकड़ा? “वह बोली—यह मेरा पति है। इसे मैं अपने घर ले जाना चाहती हूँ।” अब तो चिमनराय का बोध और बड़ गया। उसने हाथ छुड़ाना चाहा, मगर चाण्डालिन ने छोड़ा नहीं। आगिर पुलिस आई और दोनों को पकड़ कर न्यायाधीश के सामने पेश किया।

अब चिमनराय का बोध शान्त हुआ। उसे अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ। न्यायाधीश ने पूछा—“तुम दोनों क्यों लड़े थे?” चाण्डालिन बोली—मैं अपने पति को घर ले जाना चाहती थी, मगर ये अन नहीं रहे थे, इसलिए लड़ाई हो गई।”

चिमनराय बोले “मैं इसका पति नहीं हूँ, तब इसके यहाँ कैसे जाना?”

न्यायाधीश—“क्या यह तुम्हारा पति नहीं है?”

चाण्डालिन—“पहले था, मर गया! अब नहीं है।”

न्यायाधीश—“पहले था, अब नहीं, इसका क्या अर्थ है?”

चाण्डालिन—“जब तक इसके घट में चाण्डाल था, तब तब यह मेरा पति था, अब इसके घर में चाण्डाल निवास गया है, इसलिए अब यह मेरा पति नहीं रहा।”

सबसुख, जहाँ बोधीक्षणी चाण्डाल होता है, वहाँ आदमी का हर जगह अपमान होता है। वह बड़ी मुश्किल नहीं पाता, इस चाण्डाल के कारण।

दुर्वागा ऋषि ही नहीं, महर्षि थे। महर्षि पर इतना प्रतिष्ठित होना है कि समार का सबसे शक्तिशाली और वैभवशाली व्यक्ति भी उसे नमन करता है। परन्तु



शास्त्र में क्रोध उत्पन्न होने के ४ प्रकार बताये हैं—

- (१) आत्मप्रतिष्ठित—आने आप पर होने वाला,
- (२) परप्रतिष्ठित—दूसरों के निमित्त में होने वाला,
- (३) तदुभय प्रतिष्ठित,
- (४) अप्रतिष्ठित—निमित्त के बिना ही उत्पन्न होने वाला ।

क्रोध पर विजय पाना ही सुख-शान्ति का कारण

क्रोध को शान्तिपूर्वक सहने में अनेक लाभ हैं । क्रोध आने पर मनुष्य को एक-दम चुप और शान्त होकर बैठ जाना चाहिए । प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो को जब भी क्रोध आता, वह चुपचाप बैठ जाता, और उसके कारणों पर विचार करता था । पाश्चात्य विचारक मेनेका ने क्रोध का इलाज विनम्र बनाया है—

*"The greatest remedy for anger is delay "*

क्रोध का सबसे बड़ा उपचार विनम्र करना है । जब क्रोध आए तब चुपचाप शान्ति में बैठ जाओ । उस समय कुछ न बोलो, न लिसो, न जवाब दो । मंग्युशियस के मतानुसार क्रोध आने पर उसके कारणों पर विचार करो ।

जेफरसन ने भी यही कहा है—

*"When angry, Count ten before you speak, if very angry, Count a hundred "*

"जब तुम गुस्से में हो, तब बोलने में पहले १० तक गिनो, अगर तुम बहुत ही गुस्से में हो तो सौ गिनो तक गिनो ।"

शास्त्र में कहा है—'कोहं असच्च कुश्चिज्जा' क्रोध को विफल बना दो । धीमे तो जो क्रोध करता ही नहीं वह महान होता है, लेकिन वह भी महान होता है, जो क्रोध को विफल कर देता है । क्रोध की विफलता के ४ चार मूल हैं—

- (१) जहाँ क्रोध आए, वहाँ से उठकर एकान्त में चले जाना
- (२) मौन हो जाना
- (३) किसी काम में लग जाना
- (४) एक-दो क्षण के लिए श्वास को रोक लेना ।

क्रोध का जमन करने के कुछ और भी उपाय हैं—जैसे

(१) प्रतिज्ञा कर लीजिए कि "अपने दुश्मन क्रोध को पाम भी न पटकने दूँगा । जब आयेगा तो उसका कटोरेला में प्रतिकार करूँगा ।"

(२) उक्त वाक्यों को लिखकर ऐसी जगह टांग दीजिए, जहाँ आपकी निगाह पड़नी रहे ।

(३) जब क्रोध आए तो अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करिए और कुछ न कुछ रण्ट लीजिए ।



—भरा हुआ घड़ा कभी छनकता नहीं, किन्तु आधा पड़ा अध्रिय आवाज करता है। विद्वान एवं बुद्धिमान व्यक्ति अभिमान नहीं करता, किन्तु गुणहीन मूर्ख अधिक बकवास करते हैं।

अभिमान की व्यक्तियों का स्वभाव अपने मुँह मियामिट्टू बनने का होता है। साहित्यकार जेम्स मियर के शब्दों में—

"The empty vessel makes the greatest sound."

"खाली बर्तन सबसे अधिक आवाज करता है।"

—वास्तव में अभिमान की व्यक्तिकरता कम है, कृत्ता ज्यादा है। इसीलिए जेम्स मियर अभिमान की स्वभाव का विवर्णन करते हुए कहता है—

"We wound our modesty and make foul the clearness of our deserving, when of ourselves we publish them"

"जब हम अपनी नम्रता या अपनी योग्यताओं का स्वयं बखान करते हैं, तब हम अपनी नम्रता को घायल करते हैं और अपनी योग्यताओं की अमदियताओं को अशुद्ध-अशुद्ध कर देते हैं।

### अभिमान की गवौंढत विचार

अभिमान की प्रायः ऐसा विचार किया करने है कि मेरे बिना दुनिया का कोई काम नहीं चलता। कई लोग अपने परिवार के मुखिया होने के नाते अभिमान करते हैं कि मेरे बिना परिवार का काम नहीं चलता, मैं न रहूँ, परिवार भूखा मर जायगा। परन्तु यह सब व्यर्थ कल्पना है, किसी के बिना किसी का काम चलता नहीं। सभी को अपने-अपने भाग्य के अनुसार सब कुछ मिलता है। परन्तु अभिमान की व्यक्ति मान लेता है कि मैं ही इसके लिए सहारा हूँ।

हरिदास नाम का एक बनिया था। उसके परिवार में वह, उसकी पत्नी और दो लड़के, यों चार प्राणी थे। हरिदास फेरी करके किराने का सामान बेचकर अपना गुजारा चलाता था। घर में कमाने वाला वह अकेला ही था, इसलिए उसके मन में यह अभिमान हो गया कि मेरे बिना परिवार का काम एक दिन भी नहीं चल सकता। इसलिए वह स्वयं कस कर मेहनत करता था और लोगों के सामने भी अपनी डींग हूंकता था। एक दिन वह मन्त के सत्संग में पहुँचा। मन्त ने कहा—“दुनिया में किसी के बिना किसी का काम नहीं चलता। यह अभिमान व्यर्थ है कि मेरे बिना परिवार या समाज का काम नहीं चल सकता।” सत्संग पूर्ण होने के बाद जब सभी लोग चले गए तब हरिदास ने मन्त से कहा—“आपने यह कहा कि दुनिया में किसी का काम नहीं चल रहा रहता। परन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरे परिवार का मेरे बिना एक दिन भी काम नहीं चल सकता। मैं स्वयं इस बात का साक्षी हूँ। मैं दिन भर में जब काम कर पैसे लाता हूँ, सभी काम को रोटी-पानी का





‘बालजगो धर्ममंड’ अशानीजन ही गर्व करता है। जो जानी और विवेकी होता है, दुनिया की सुनी आँखों से देखता है, मगार के प्रत्येक पदार्थ की वास्तविकता को समझता है, वह कभी गर्व या अभिमान नहीं करता। वास्तव में देखा जाए तो अभिमानो के हृदय में ज्ञान का निवास हो नहीं सकता। जिन्ही के कमीज की जेब फटी हो तो उममें पैंगे टिके नहीं रह सकने, नीचे गिर जाएंगे, वैसे ही जिन्ही व्यक्ति का हृदय अभिमान से फटा पड़ा हो, उममें ज्ञान और विवेक कहीं टहरेंगे ? एक विचारक कहता है कि ‘अभिमानो अपने आपको सर्वोत्कृष्ट और दूसरे को निहृष्ट मानकर दो गननियाँ करता है।’

अभिमानो के मन में प्रदर्शन की भावना

अभिमानियो का मन इतना मकीण एक चुच्छ होता है कि वह दूसरो की तरफ़ी देख कर जलने लगता है। वह दूसरो के धमण्ड को घूणा की दृष्टि से देखता है, दूसरो की प्रतिष्ठा उगे सटकती रहती है, दूसरे का अत्यधिक सम्मान उसे कटि की तरह चुभता है। वह दूसरो को नीचे गिराकर या दुनिया की नजरों में दूसरो को नीचा दिखाकर उसकी नीच पर अपनी प्रतिष्ठा का महल लडा करने का प्रयत्न करता है। अह्वारी व्यक्ति ही अधिक बोलने है, वे ही अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करने के लिए दूसरो से वाद-विवाद करने के लिए बमर कमे रहते हैं। ऐसे अभिमानो एवं अह्वारी सोफो को प्रदर्शन की बीमारी लगी रहती है। वे जब देखो, तब अपनी अह्वारी भूष मिटाने के लिए बोई न कोई आठम्बर करते रहते हैं। दिखावे से उनको इतना अधिक प्रेम होता है कि अगर उनकी दृष्टि में यह आ जाए कि दूसरा उनसे अधिक बाजी मार रहा है तो वे अपना सर्वस्व खर्च करके, दूसरो से उधार लेकर भी अपना प्रदर्शन करके अपना बहण्ण दिखाने रहते हैं। अपनी हैमियन नहीं होने पर भी अभिमानो दुनिया की जवान में अधिक शक्तिशाली, घनवान् या बुद्धिमान अथवा चारिषवान् बहलाने के लिए, या दुनिया की नजरों में श्रेष्ठ जेवने के लिए अपना सर्वस्व होम देता है।

एक गरीब स्त्री एक दिन जिन्ही सेठ के यहाँ गई। सेठानी ने चुड़ा पहन रखा था। वह हाथीदांत का बना हुआ और बहुत ही बड़िया था। पड़ोमिनें उसे देखने आ रही थीं और सेठानी को बधाइया देने वालों का ताता लग रहा था। गरीब महिला ने जब वह रगड़य देखा तो मन में सोचा—‘मैं भी क्यों न हाथीदांत का चुड़ा पहनूँ और पड़ोमियो में बधाइया प्राप्त करूँ।’ उस कया था, ५२ आने ही उमने अपने पति में कहा—‘मुझे हाथी दांत का चुड़ा ला दो।’ पति ने कहा—‘देखती नहीं, पर भी परिचरिनि बंनो है ? यहाँ तो पेट भी बटिनाई से भरता है और तुम्हें हाथीदांत का चुड़ा चाहिए।’

परन्तु पत्नी भी गरीबी और हटी थी। उमने साफ कह दिया—‘चुड़ा लाओगे, तभी चुन्हा खेनेगा। मैं चुबें के बिना रह नहीं सकती।’



## अभिमानी शोक-परायण व चिन्तानुर वधों रहता है ?

प्रश्न होता है, अभिमानी को मदन शोक या विन्ना में घमन क्यों रहना पड़ता है ? जैसा कि गोतम ऋषि ने कहा—“माणसिणो सोपपरा हवन्ति” हमारे अनुसार अभिमानी का स्वभाव ही ऐसा बन जाता है कि उसे कोई दूसरा आने में बड़कर नहीं जैवता। वह अपने अभिमान की धूल को मिटाने के लिए अहंनिश चिन्तित, व्यथित और परेशान रहता है। आज अमुक व्यक्ति आगे बढ़ गया है तो कल कोई और उमगे भी आगे बढ़ जाता है तो अभिमानों की छाती पर गाय लोटने लगता है। उसे दूसरों में आगे बढ़कर वाजी मारने की सूझनी है। उमरा अहंकार उगे चैन-गे बैठा नहीं रहने देता। शुभ्रबन्दाचार्य ने ठीक ही कहा है—

‘सुप्यते मानस एमां शिवेशमलवोचनम् ।’

अभिमान से मनुष्य का विवेकनेत्र नष्ट हो जाता है।

धारा नगरी में राजा भोज की कीर्तिपताका दान-सम्मान के कारण चारों ओर फैल रही थी। उनका एक ममवयस्क मित्र था, सेठ सीमदत्त। वह पर्याप्त धन होते हुए भी पक्का बज्रम था। राजा भोज की मनःस्थिति उसके दान, ज्ञान और सम्मान से बमल की सी प्रफुल्लित थी, पर सेठ की मनःस्थिति थी पतझड़-भी थी, ज़िगमै न पत्ते, न फूल, बेवज्र टूट ही टूट थे, क्योंकि वृद्धावस्था में सेठ को पत्नी गुजर गई थी, एक लड़का था, वह बेक्यागामी हो गया। पुत्री-जामाता सेठ का धन पाने के लिए उसकी मृत्यु-कामना कर रहे थे। इस कारण सेठ उदासी और बेचैनी का जीवन जी रहा था। एक दिन सप्तकीर्ति मुनि ने जब सेठ ने अपनी मनोव्यथा तथा अपने मित्र राजा भोज के सुख और सन्तोष की बात कही तो उन्होंने कहा—“अगर तू सच्चा सुख और सन्तोष चाहता है तो धन का मोह छोड़। क्या तेरा सप्रहीत धन तेरे साथ परलोक जाएगा ?”

सेठ—नहीं, गुरुदेव ।”

मुनि बोले—“तो फिर पुत्रादि को जो देय है, उस अश्व धन को देकर शेष धन परोत्तकार में लगा। जब गू यह कर चुके, फिर तुझे शाश्वत शान्ति की राह बताऊँगा।”

सेठ की बन्द त्रिजोरियाँ और भण्डार खुल गए। सेठ के नाम के विद्यालय, अनाथालय, बिबिम्सालय खुल गए। कवियों और पण्डितों की झोलियाँ भी खूब भरी। फलतः उन्होंने सेठ के गुणगान गाए और महादानी घोषित किया। माल भर में राजा भोज ने जितना दान दिया था, उतना सेठ ने एक हफ्ते में दे दिया। अब सेठ अपने को राजा से ऊँचा समझ बैठा। प्रशमकों और भाटों ने उसे दानवीर वरुण का अवतार बताकर उसकी खूब प्रशंसा की। इन सबका असर यह हुआ कि सेठ गर्व से पुल गया। उसकी चालचाल और बोलचाल में दर्प और अभिमान टपकता था।



## अभिमान की शोक-परायण व चिन्तानुर पयो रहता है ?

प्रश्न होता है, अभिमान की गन्तव्य शोक या चिन्ता में प्रसन्न क्यों रहना पड़ता है ? जैसा कि गौतम ऋषि ने कहा—‘माणसिजो सोयपरा हवन्ति’ इसके अनुसार अभिमान की स्वभाव ही ऐसा बन जाता है कि उसे कोई दूसरा पाने में बड़कर नहीं जैवता । वह अपने अभिमान की धूल को मिटाने के लिए अहर्निश चिन्तित, व्यथित और परेशान रहता है । आज अमुक व्यक्ति आगे बढ़ गया है तो कन कोई और उममें भी आगे बढ़ जाता है तो अभिमान की छानो पर माथ सोटने लगता है । उसे दूसरों में आगे बढ़कर बाजी मारने की सूझती है । उमका जटकार उमे चैन-में बैठ नहीं रहने देता । शुभवन्दाचार्य ने ठीक ही कहा है—

‘सुप्यते मानस पुमां विवेकमलनोचनम् ।’

अभिमान से मनुष्य का विवेकनेत्र मल्ट हो जाता है ।

धारा नगरी में राजा भोज की कीर्तिपताका दान-सम्मान के कारण चारो ओर फैल रही थी । उनका एक समवयस्क मित्र था, सेठ सोमदत्त । यह पर्याप्त धन होते हुए भी पक्का बज्जुस था । राजा भोज की मन-स्थिति उसके दान, ज्ञान और सम्मान से बमल की सी प्रकृतिन थी, पर सेठ की मन-स्थिति थी पनझट-भी थी, जिगमें न पत्ते, न फूल, केवन दूँट ही दूँट थे, क्योंकि वृद्धावस्था में सेठ की पत्नी गुजर गई थी, एक लहका था, वह बेव्यापारी हो गया । पुत्री-श्रामाना सेठ का धन पाने के लिए उसकी मृत्यु-कामना कर रहे थे । इस कारण सेठ उदासी और बेचैनी का जीवन जी रहा था । एक दिन सबलकीर्ति मुनि से जब सेठ ने अपनी मनोव्यथा तथा अपने मित्र राजा भोज के सुल और सन्तोष की बात कही तो उन्होंने कहा—“अगर तू सच्चा मुख और सन्तोष चाहता है तो धन का मोह छोड़ । क्या तेरा सप्रहीन धन तेरे साथ परलोक जाएगा ?”

सेठ—नहीं, गुरुदेव ।”

मुनि बोले—“तो फिर पुत्रादि को जो देय है, उग अश धन को देकर शेष धन परीकार में लगा । जब तू यह कर चुके, फिर तुझे शाश्वत शान्ति की राह बताऊंगा ।”

सेठ की बन्धु निजोरिया और भण्डार खुल गए । सेठ के नाम के विशालय, अनायासय, बिनिश्मालय खुल गए । बकियों और पण्डितों की झोलिया भी खूब भरी । फलनः उन्होंने सेठ के गुणगान गाए और महादानी घोषित किया । साल भर में राजा भोज ने जितना दान दिया था, उतना सेठ ने एक हफ्ते में दे दिया । अतः सेठ अपने को राजा से जैसा समझ बैठे । प्रसन्न हो और भाटों ने उसे दानवीर वर्ण का अवतार बताकर उसकी खूब प्रशंसा की । इन सबका असर यह हुआ कि सेठ गर्व से पून गया । उसकी आसनाल और झोलचाल में दर्प और अभिमान जलकता हो ।



हाथ में जानी रही। अब न तो दामियाँ रही और न ही घोड़ी त्रिग पर बैठकर ठाकुर अफीम खाने से। फिर भी पुरानी रीति के पावन की ठाकुर को हृदय में चिन्ता रहती थी। अब वे अपने मरान की एक दीवार को अपनी घोड़ी के रूप में इस्तेमाल करने लगे। जब भी अफीम खाना करना होता, वे इन दीवार पर चढ़ जाते और ठाकुरानी से कहते—‘अब दामियाँ तो हैं नहीं, तुम ही मुझे अफीम खोल कर दे दो।’ जब ठाकुरानी उन्हें अफीम साँवर पकड़ा देती। तब वे दीवार से कहते—‘बल, घोड़ी बल।’ इस तरह अहवाली ठाकुर साहब अपनी पुरानी मृदु की परम्परा को छोड़ जा रहे थे। वे विवेकपूर्वक उमका परिष्कार न कर सके कि अब इस स्थिति में उम परम्परा के पावन की क्या जरूरत है?

इन ठाकुर साहब की तरह धार्मिक साधकों की भी स्थिति भी कुछ ऐसी बनी हुई है कि वे द्रव्य-शेष काल भाव के अनुसार समाजहित को देखते हुए परम्पराओं में उचित समोधन इसलिए नहीं करते कि इससे पूर्वजों की पुरानी रीति का पालन नहीं होगा, भले ही उनके पूर्वजों ने अपने युग की परिस्थिति अनुसार बहुत-सी परम्पराओं में रीतिबदल किया हो। परन्तु अहंकार उन्हें ऐसा करने से रोकता है। अहं की रक्षा के लिए चाहे उन्हें ठाकुर साहब की तरह दम्भ और दिखावा हो क्यों न करना पड़े?

### अभिमान-रक्षा के लिए दूसरों को नीचा दिखाने की चिन्ता

फिर अहंकारी व्यक्ति अपने अभिमान की रक्षा के लिए हर समय मन में चिन्तित रहता है कि मैं सबसे सर्वोपरि कैसे बहलाऊँ? भले ही उसमें दूसरों से अधिक क्रिया-बल, चरित्र वन न हो। अगर हो तो भी उसका अभिमान प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में व्यक्त करने की क्या आवश्यकता है? परन्तु अभिमान की इस धान को नजरअन्दाज कर देना है और अपने अहं (क्रिया, चरित्र या धन आदि के) को व्यक्त करने के लिए दूसरों को नीचा दिखाने या समाज की दृष्टि में नीचा गिराने की दिशा में रहना है। जब भी नीचा आना है, वह व्याख्यान में, भाषण में, सम्भाषण में अपनी उत्कृष्टता की सीढ़ी हाँकता है और दूसरों के चरित्र, ज्ञान, धर्म या धन, सत्ता आदि की बड़ी आलोचना करके लोगों की दृष्टि में उन्हें घृणापात्र और निम्न-बौद्धिक के बना देना चाहता है, ताकि लोग उनकी प्रतिष्ठा और दृग्गत अधिक करें, उनके अनुयायी अधिक बनें।

### सिद्धि का अभिमान मनुष्य को पराजित कर देता है

कई बार मनुष्य को तब एक जग की साधना में कई तथ्य, सिद्धियाँ या सिद्धि प्राप्त हो जाती हैं। पर उन्हें प्रशंसा नहीं मिलती है। बड़े-बड़े साधक इस सम्बन्ध में असफल हो जाते हैं। अभिमान के हाथी पर बैठकर धानव अपने आपकी सारी दुनिया से घेरे समझने लगता है, तब वह दूसरों को पराजित करने के प्रयत्न





## माया के रहते आत्म-शुद्धि नहीं

शास्त्र में साधकों को आत्मशुद्धि के लिए आत्मोचना, निन्दना, गर्हणा, प्रायश्चित्त आदि साधनाएँ बनाई हैं, किन्तु उन सबके साथ एक बड़ी शर्त रखी गई है कि आत्मोचना आदि की साधनाएँ तभी सफल होगी और साधक की आत्मशुद्धि भी तभी होगी, जब वह माया की चैतरणी नदी को पार कर जाएगा। अगर मन में या वचन में जरा भी माया दबकर आत्मोचना आदि करेगा, तो वह यथाथ आत्मोचना आदि नहीं होगी, यथाथ आत्मोचना आदि के न होने की स्थिति में आत्मशुद्धि नहीं हो सकेगी। पाप उसके अन्तर में तीसे काटो की तरह खटकने और घुमते रहेंगे, उसके अन्तर में पापों का बोझ बना रहेगा, वह हलका नहीं होगा। इस कारण उसके जीवन में समाधि भाव-शान्ति भाव नहीं आ सकेगा। मूल कृपाग्र मूल (श्रु २, अ २, ३-१३) में स्पष्ट बताया है—

“मायी मायं बट्टु णो आलोएइ, णो पडिक्कमेइ, णो निदइ, णो अहारिह तथोक्कमं पापच्छित्तं पडिक्कजइ।”

मायी साधक अवश्य करके उसकी आत्मोचना, प्रतिनिमण, आत्मनिन्दा, गर्हणा आदि नहीं करता और न यथोचित तप-कर्म-प्रायश्चित्त पट्टण करता है, (वह कुल पापों को दहना चाहता है), उसे अपवश का भय बना रहता है। इस कारण उसकी आत्मशुद्धि नहीं हो पाती।

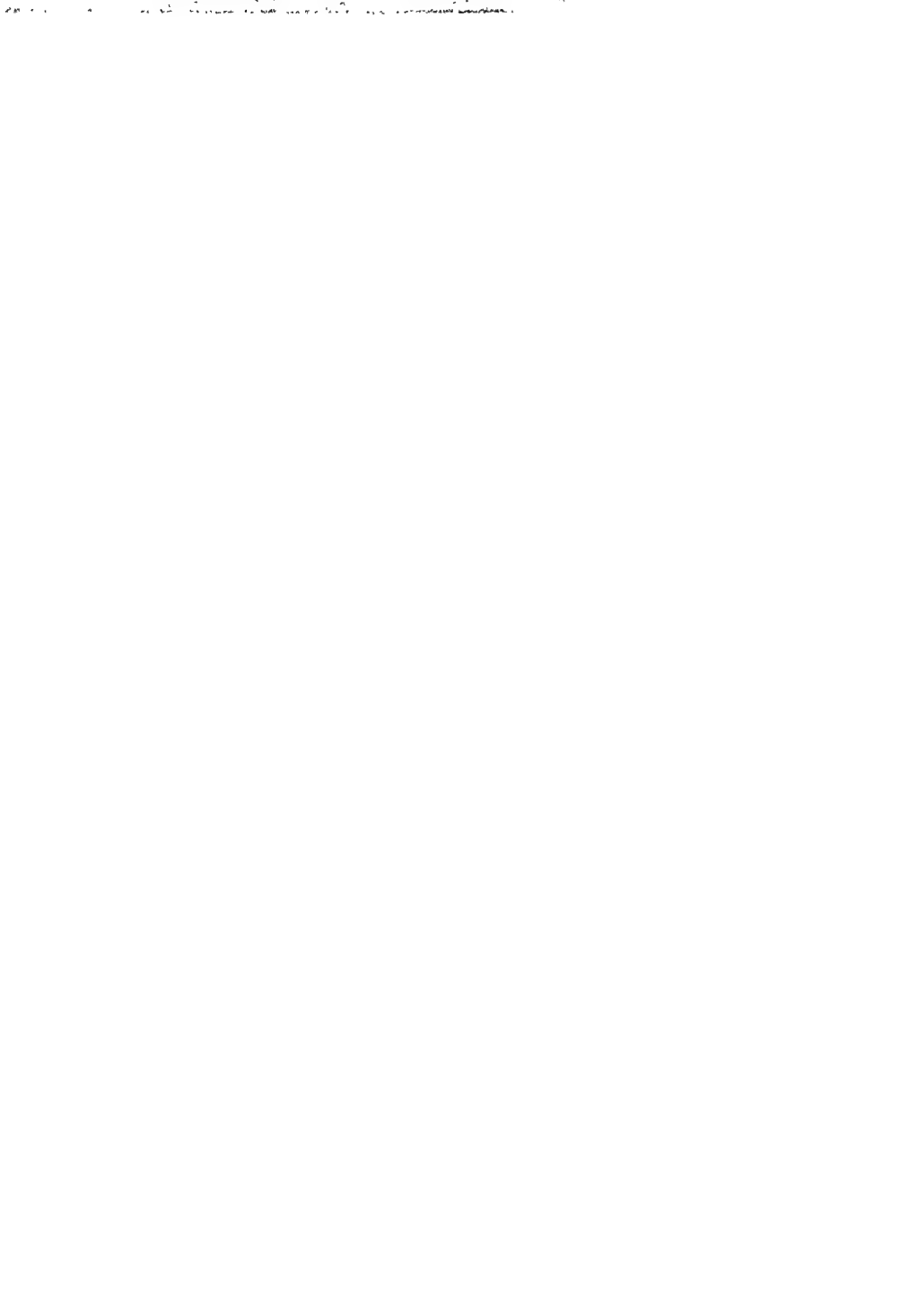
वास्तव में, अपनी माया या अपने जीवन के किसी भी अंग-प्रत्यंग में प्रचलित माना को तो मनुष्य स्वयमेव पहचान लेता है। उसके लिए किसी दूसरे को बचील बनाने की जरूरत नहीं होती।

## माया तेरे कितने रूप ?

माया यहाँ न तो धन-सम्पत्ति के अर्थ में है और न ही वह ब्रह्म की माया के अर्थ में है। यहाँ मुख्य रूप में माया कपट अर्थ में है। जहाँ-जहाँ कपट, छल, झूठ-फरेब, दम्भ आदि हो, वहाँ-वहाँ माया का वास है। इस प्रकार हम देखते हैं कि माया अनेक रूपों में मानव जीवन में खेलती रहती है। कभी वह कपट के रूप में आती है तो कभी झूठ नीति और मायाचार के रूप में आती है, वहाँ वह प्रचारणा, घोषेबाजी और बचना के रूप में आती है, तो कहीं छल, झूठ-फरेब, घोषा-झड़ो, और बेईमानी के रूप में अपनी माची दिखानी है। कभी वह दुराव और छिगाव के रूप में जीवन में प्रविष्ट होती है तो कभी कुटिलता और जटिलता के रूप में। कभी वह दम्भ और पागलपन के रूप में अवतरित होती है तो कभी वह डोंग और बहुनेबाजी के रूप में। मतलब यह कि माना का एक ही रूप नहीं है वह विविध रूपों में जीवन की माटपजाला में नाटक के रंगमंच पर आती है।

माया : कपट के रूप में :

कपट माया का दाहिना हाथ है। वह जीवन में जब आता है तो बलुणित कर देता है। कभी-कभी वह कपट दूसरों को बदनाम करने के लिए एक पड़पड़ के



को बिलकुल रोककर मन ही मन इन्द्रिय विषयों का स्मरण करता रहता है, वह मूढारामा मिथ्याचारी कहलाता है।

जो व्यक्ति बाहर से तो उज्ज्वल पवित्र मन या भक्त के रूप में रहता है, धार्मिक शिष्टाचार भी करता है, भगवान् का जात्र भी करता, तस्मया भी करता है परन्तु अन्दर से उनका मन बग में नहीं है, इन्द्रियों पर उनका नियन्त्रण नहीं है। मन और इन्द्रियों विषयों की ओर दौड़ती रहती है। वह ध्यान तो लगा लेता है, परन्तु बगुने की तरह उनकी दृष्टि या चिन्तन अपने अभीष्ट सासारिक पदार्थों की ओर ही होता है।

बौद्ध जातक में एक कथा है। वाराणसी में महादत्त राजा के राज्य काल में बोधिमन्त्र चन्दनगोह के रूप में जन्मे थे। वह चन्दनगोह घोर जगन में रहती थी। एक दिन उगते देखा कि उसने निवास के पट्टीम में ही एक माधु पर्णकुटी बनाकर रहने आगू हैं। अब प्रगल्भ होकर गोचने लगी—“अच्छा हुआ, मुझे रोज प्रातः काव सन के दर्शन होंगे।” वह प्रतिदिन प्रातः काल माधु के दर्शन करने उनकी पर्णकुटी पर जाने लगी।

परन्तु यह माधु मक्का नहीं था, मायाचारी या मिथ्याचारी था। ऊपर से माधु के शिष्टाचार करता था, पर उनके अन्दर से सासारिक पदार्थों की लालसा थी। एक दिन उन माधु के कुछ सेवक अपने घर में पका हुआ मांस ले आये थे, उसने अहिंसा मर्यादा का विचार न करके वह मांस खा लिया। मांस उसे बहुत स्वादिष्ट लगा, इसलिए मेढकों में पूछा—“यह मांस तुम किसका लाये थे?” सेवक बोले—“यह तो चन्दनगोह का मांस था।” चन्दनगोह का नाम सुनते ही माधु के मन में एक दुष्ट विचार स्फुरित हुआ कि जो चन्दनगोह प्रतिदिन मेरे दर्शनार्थ आती है उसे पकड़कर चट कर जाऊँ।” दोनों माधु ने मांस के साथ खान की सामग्री—घी, दही, मिर्च-मसाले आदि इकट्ठे करने शुरू कर दिए। चन्दनगोह के आने का समय हुआ, तब वह माधु पर्णकुटी के द्वार पर हाथ में लोह का खड़ा-या मर्गिया लेकर बैठ गया और मुह में भगवान् का नाम जपन लगा।

परन्तु यह चन्दनगोह भी बच्ची मिट्टी की नहीं थी। रात को घोर लोग उसका उपयोग करने थे, इसलिए हम सबभक्त भी माया उसमें छिपी न रह गयी। आज उसके चेहरे पर से वह समझ गई कि कुछ न कुछ डान में जाना है। यह माधु मेरे आने के समय में दरवाज़ में अभी बैठता नहीं है पर आज “।” माधु के दरवाज़ देखकर वह बागम मुड़ गई और पर्णकुटी के पीछे आ गई। रगोड़े में से चन्दनगोह के मांस की गंध आने से वह समझ गई कि यह बौली माधु मुझे मारने के लिए लाक कर बैठा है। फिर चन्दनगोह पर्णकुटी के अन्दर न घुसकर उसी ही बाहर से ही जाने लगी त्यों ही माधु ने हाथ में लिया हुआ मर्गिया उस पर फेंका। परन्तु चन्दनगोह तो मरमराहट करती हुई वहाँ से चली गयी, उसके हाथ न आयी।



विश्राम हो गया। सेठ से सैन का मूल्य पूछा तो उन धूर्त ने कहा—“सैन का मानिक तो २५ हजार कहता है, पर मैं आपको २० हजार में दिला दूंगा।” इस पर सेठ ने कहा—“१५ हजार में सौदा तय करा दो एक हजार तुम्हें दलाली दे दूंगा।” सौदा तय हो गया १५ हजार में। दस हजार तो सेठजी के पास थे, वे उन्होंने दलाल को दे दिये। दलाल ने कहा—“शेष पाँच हजार आप मामाजी से ले आइए। तब तक मैं इसकी लिखा-पढ़ी करता हूँ।” सेठ अपने मामा के पास आये। उनसे ५ हजार रुपये माँगे तो उन्होंने पूछा—“किमलिए चाहिए?”

सेठ ने कहा—“एक जरूरी काम है।” एक सेठ देखकर आया है। वहाँ निधि गड़ी हुई है। १५ हजार में सैन मिल रहा है।” मामा सारी बातें सुनकर दलाल की चामाकी समझ गये। वे तुरन्त सेठ के साथ बुढ़ाली फावड़ा लेकर उस सेठ पर पहुँचे जहाँ निधि बतलाई गई थी, वहाँ खोदने लगे। इतने में आवाज आई—“खोदना रोको, नहीं तो मैं भस्म कर दूँगा।” साहसी मामा ने कहा—“तुम साप हो तो हम आदमी हैं, मार डालेंगे तुम्हें।” आखिर खोदना न सका तो वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा—“अब मत खोदिये। मुझे चोट लग सकती है। मैंने तो अपने पेट के लिए यह प्लान रचा था।” अब सेठजी की समझ में आया कि यह सब जालसाजी थी। परन्तु दस हजार रुपये जो खर्च को दे चुके थे, वे व्यर्थ गये।

इस प्रकार घोसेबाजी और जालसाजी के किस्से आए दिन अखबारों में पढ़ते हैं। किसी ने सौ रुपये के नोटों के बदले में हजार रुपये के बना देने का लोभ देकर असली नोट में लिए और नकली नोट पकड़ा दिये, एक दो को सौ दे दिये, बाकी के लोगों के हज़म कर लिये। कोई दस तोले सोने का मी तोला सोना बना देने का बहमा देकर सारा सोना लेकर फरार हो गया। कोई किसी प्रकार से रुपये ठग कर ले गया।

ये सब बचना, प्रचारणा और घोसेबाजी जालसाजी आदि माया की ही बंटियाँ-पानियाँ हैं। इन्हें अपनाकर तो व्यक्ति ठगी, झूठ-फरेब और धोखाधड़ी करता है। परन्तु ये सब कपट के धंधे करने वाले व्यक्ति देर-सवेर से उन दुष्कर्मों के फल अवश्य भोगता है, तब वह रोता-पीटता है। दूसरी की ठगने या बचना करने वाला व्यक्ति एक तरह से आत्म-बचना करता है, अपने आपको ही ठगता है। पारनात्य विचारक जी० बैली (G Bailey) कहता है—

“The first and worst of all frauds is to cheat oneself”

समाम छलकपटों में सबसे निरुपद्रव छलकपट है—अपने आपको ठगना—आत्म-बचना करना।

मैं रुपये का नोट देख दुकानदार ने अपने ग्राहक से कहा—“मेरे पास तो ८० रुपये ही हैं।” ग्राहक नोट भुनाने चला गया, क्योंकि दुकानदार को उते सादे दस रुपये ही देने थे। मगर चालाक ग्राहक थोड़ी देर बाद नोट आया और कहने लगा—



थे। सिनेमा भी प्रतिदिन देखते थे। यो १५ दिन बीन गए। पैसा मग सर्व हो चुका, इसलिए अब चारों ने अपने वतन की ओर जाने का निश्चय किया। जब वे रवाना होने लगे, तब साँज वाले ने सौ रुपये का बिल उनके गमदा रखा। बिल देख कर वे चौंके—'इतना अधिक बिल कैसे हुआ?' साँज वाले ने कहा—'उम समय भोजन की प्लेटों का आर्डर देना और खाना बहुत अच्छा लगता था, अब बिल चुकाना बहवा लगता है? परन्तु चारों मायाचारियों के पास छन समाप्त हो चुका था, इसलिए चेहरा फीका पड़ गया। वे साँज वाले से झगड़ा करने लगे कि "हम इतना पैसा नहीं देंगे।" इस पर साँज वाले ने कोर्ट में मुकद्दमा दायर किया। ग्यायाधीश ने फैसला दिया कि "जब तक वे साँज का पूरा बिल न चुका दें, तब तक चारों को साँज में नौकरी करनी होगी।"

इसीलिए तो कहा गया—

'मायाविणो वृत्ति परस्स पेसा'

मायी जन दूमरो के दास बनते हैं।

छन कपट करनेवाले को दूमरो की चादकारी, चापलूसी, मुशामद, नम्रता, विनय आदि का व्यवहार करना पड़ता है, दूमरे की रजि का पूरा खयाल रखना पड़ता है, मायाचार करने में भी पूरी सतर्कता रखनी पड़ती है, यह सब दामता या गुनामी ही तो है। एक नौकर भी अपने मालिक का इतना ध्यान नहीं रखता, उसे सिर्फ मालिक के द्वारा सोपे हुए काम से मतलब रहता है, परन्तु माया—कपट करने वाले को जिसके साथ वह कपट करना चाहता है, उसके प्रति बहुत ही नम्र, मधुर व सरस व्यवहार करना पड़ता है। अपने भावों को छिपाने, बाहर-अन्दर की भिन्नता को प्रगट न होने देने के लिए काम प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इस प्रकार मायाचारी का पाठ अदा करने के लिए मायी को रातदिन दूमरे की इच्छा रखनी पड़ती है।

माया के फलस्वरूप इस जन्म में दासता

पूर्व जन्म में किसी ने माया छनवपट या कुटिलता की हो तो उसका फल इस जन्म में दासता के रूप में मिले बिना नहीं रहता।

पद्मिनी वाराणसी के बमठ में ही दुबली और साठवीं बेटि थी। वह बचपन से महा माया का घट थी। माता-पिता को भी झूठ बोलकर, कपट रचकर गुम रखती थी। उनका भी पुत्री के प्रति अत्यन्त मोह था। जीवन अवस्था आने ही 'चन्द्र' नामक एक परदेसी के साथ घर जमाई बन कर रहने की शर्त पर पद्मिनी की शादी कर दी। कुछ अर्से बाद पद्मिनी के माता-पिता चल बसे। अब पद्मिनी और चन्द्र दोनों घर के मालिक हुए। परन्तु मायाविनी पद्मिनी अब स्वच्छन्द और अनाचारी हो गई। पति बहो बाहर जाता तो वह परपुरुष के साथ अनाचार सेवन करती थी। परन्तु पति के आने पर वह अत्यन्त विनय का शोष करती और उसके वियोग में दुःखित हो जाने का ऐसा वर्णन करती कि पति समझता—यह महामती है।





थे। गिनेमा भी प्रतिदिन देखते थे। यो १५ दिन बीन गए। पैमा सब लखे हो चुका, इसलिये अब चारो ने अपने दतन की ओर जाने का निश्चय किया। जब वे रवाना होने लगे, तब लॉज वाले ने मौ रपये का बिल उनके गमला रखा। बिल देख कर वे चौंके—‘इतना अधिक बिल कैसे हुआ?’ लॉज वाले ने कहा—‘उम गमय भोजन की प्लेटो का आर्डर देना और खाना बहुत अच्छा लगता था, अब बिल चुकाना बहवा लगता है? परन्तु चारो मायाचारियों के पास धन समाप्त हो चुका था, इसलिये चेहरा फीका पड़ गया। वे लॉज वाले से झगड़ा करने लगे कि ‘‘हम इतना पैसा नहीं देंगे।’’ इस पर लॉज वाले ने कोर्ट में मुकदमा दायर किया। ग्यायाधीश ने फैसला दिया कि ‘‘जब तक वे लॉज का पूरा बिल न चुका दें, तब तक चारो को लॉज में नौकरी करनी होगी।’’

इसीलिये तो कहा गया—

‘मायाविणो हंति परस्स पेसा’

मायी जन दूसरो के दास बनने हैं।

छत्र कपट करनेवाले को दूसरो की चाटुकारी, धांपलूसी, सुधामद, नम्रता, विनय आदि का व्यवहार करना पड़ता है, दूसरे की रुचि का पूरा खयाल रखना पड़ता है, मायाचार करने में भी पूरी सतर्कता रखनी पड़ती है, यह सब दासता या गुनामी ही तो है। एक नौकर भी अपने मालिक का इतना ध्यान नहीं रखता, उसे सिर्फ मालिक के द्वारा मीपे हुए काम से मतलब रहता है, परन्तु माया—कपट करने वाले को ज़िमके माथ वह कपट करना चाहता है, उसके प्रति बहुत ही नम्र, मधुर व सरम व्यवहार करना पड़ता है। अपने भावो को छिपाने, बाहर-अन्दर की भिन्नता को प्रगट न होने देने के लिए कम प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इस प्रकार मायाचारी का पार्ट अदा करने के लिए मायी को रानदिन दूसरे की इच्छा रखनी पड़ती है।

माया के फलस्वरूप इस जन्म में दासता

पूर्व जन्म में किसी ने माया छत्रकपट या कुटिलता की हो तो उसका फल इस जन्म में दासता के रूप में मिले बिना नहीं रहता।

पद्मिनी वाराणसी के ब्रह्म संठ की इबलीली और लाड़ली बेटी थी। वह बचपन से महा माया का घट थी। माता-पिता को भी झूठ बोलकर, कपट रचकर गुम रखती थी। उनका भी पुत्री के प्रति अत्यन्त मोह था। यौवन अवस्था आने ही ‘बन्धू’ नामक एक परदेशी के साथ घर जमाई बन कर रहने की शर्त पर पद्मिनी की शादी कर दी। कुछ अर्से बाद पद्मिनी के माता-पिता चल बसे। अब पद्मिनी और पण्ड दोनो घर के मानिक हुए। परन्तु मायाविनी पद्मिनी अब स्वच्छन्द और अनाचारी हो गई। पति वही बाहर जाता तो वह परपुरुष के साथ अनाचार सेवन करती थी। परन्तु पति के आने पर वह अत्यन्त विनय का शौख करती और उसके विपोग में दुःखित हो जाने का ऐसा वर्णन करती कि पति समझना—यह महागत्री है।



### ‘धम्मो सुद्धस्त चिट्ठइ ।’

हमारा प्राचीन भारतीय योग शास्त्र तो मन की निष्कपटता पर अधिक जोर देता है । महात्मा ईशा के ये अमर वचन देखिये—

‘जिनका हृदय बातकों की तरह पवित्र है, स्वच्छ है, जो सरल और निष्कपट हैं, वे ही ईश्वरीय राज्य में प्रवेश करेंगे ।’

‘स्वच्छ हृदय मायारहित होना है, उसी में परमात्मा का निवास होता है ।’

जो जीवन मायारहित मूल सत्यमय होना है, उस पर पशु-पक्षी आदि सभी प्राणी विश्वास कर लेते हैं, गरल, स्वभायी, व्यक्ति की वे सब गेषा करते हैं । सरल स्वच्छ हृदय में पर हृदयस्थ माया का पना पग जाना है, वह व्यक्ति राजनीतिक क्षेत्र में हो तो भी गांधीजी की तरह विरोधी भी उस पर विश्वास करने हैं, वह अज्ञान-शत्रु बन जाता है । दौड़री के हृदय में आए हुए मन्दे विचारों की शुद्धि सरलता से मायारहित होने पर ही हुई । मायारहित होने पर ही आलोचना, निन्दना, गहंगा, प्रायश्चित्त आदि द्वारा व्यक्ति आत्मशुद्धि कर सकता है ।

साध्य कितना ही पवित्र एवं उत्कृष्ट वयो न हो, यदि उस तक पहुँचने का साधन मायादि दोषों से युक्त पतन है, तो साध्य की उपलब्धि भी असम्भव है । जिस तरह मिट्टी का तेल जलाकर वातावरण को सुगन्धित नहीं बनाया जा सकता, उसी तरह मायादि दोषयुक्त साधनों के सहारे उच्च सत्य की प्राप्ति नहीं किया जा सकता । वातावरण शुद्धि के लिए लोग सुगन्धित द्रव्य जलाते हैं, तथैव उत्तम साध्य के लिए साधनों का होना अनिवार्य है, जनसेवा जैसा सार्वजनिक क्षेत्र हो, या राजनैतिक, सामाजिक कान्ति हो या व्यक्तिगत साधना, सर्वत्र मायादि रहित शुद्ध साधनों के होने पर सत्य की प्राप्ति होगी । आर्थिक क्षेत्र में भी नीति धर्मयुक्त पुष्ट्यार्थ न करके लोग धुआ, गट्टा, चोरी, मिलावट, तस्करी, गुनाहारी आदि मायायुक्त अनुचित उपायों को अवलम्बते हैं, वे सब पर-वत्प्राण एवं आत्मशुद्धि के मार्ग में स्वन रोड़ा अटकाते हैं, स्वयमेव माया जनित उपायों का आश्रय लेकर या झूठे आडम्बर आदि से प्रसिद्धि एवं बाहु-बाही प्राप्त करके कुछ अर्थ के लिए भले ही चमक जाएँ, पर वह तो ‘घार दिनों की चाँदनी, फिर अघेरी रात’ की तरह अस्थायी चमक है, मुझते हुए दीपक की तरह एक बार की भमक है, फिर तो अन्धकार एवं पतन है । अतः जीवन का उत्थान चाहते हैं, आत्मा की विशुद्धि की ओर धा है, स्तनत्रय की साधना में साध्य—मोक्ष प्राप्ति है, तो मायारहित जीवन बनाइये, वही उत्थन जीवन है । गरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सांसारिक मन्त्रों निर्वीर्य पदार्थ आदि स्तनत्रय की ओर ही ल जाता है, इनकी गुलामी में युक्त शुद्ध मायारहित होने पर ही प्राप्ति होता है ।



### ‘धम्मो सुद्धस्य विट्ठइ ।’

हमारा प्राचीन भारतीय योग शास्त्र तो मन की निष्कपटता पर अधिक जोर देता है । महात्मा ईंगा ने ये अमर वचन देगिये—

‘त्रिनका हृदय बातों की तरह पवित्र है, स्वच्छ है, जो सरल और निष्कपट हैं, वे ही ईश्वरीय राज्य में प्रवेश करेंगे ।’

‘स्वच्छ हृदय मायारहित होता है, उसी में परमात्मा का निवास होता है ।’

जो जीवन मायारहित मुख्य सत्यमय होता है, उस पर पशु-पक्षी आदि सभी प्राणी विश्वास कर लेते हैं, सरल, स्वभावी, व्यक्ति की ये सब सेवा करते हैं । मरल स्वच्छ हृदय में पर हृदयस्थ माया का पता लग जाता है, वह व्यक्ति राजनीतिक क्षेत्र में हो तो भी गौधीशी की तरह विरोधी भी उस पर विश्वास करते हैं, वह अज्ञात-शत्रु बन जाता है । द्रोपदी के हृदय में आए हुए मन्दे विचारों की शुद्धि सरलता में मायारहित होने पर ही हुई । मायारहित होने पर ही आलोचना, निन्दना, गर्हणा, प्रायश्चित्त आदि द्वारा व्यक्ति आत्मशुद्धि कर सकता है ।

साध्य किन्ता ही पवित्र एवं उत्कृष्ट क्यों न हो, यदि उम तक पहुँचने का साधन मायादि दोषों में युक्त गलत है, तो माध्य की उपलब्धि भी अमम्भव है । जिस तरह मिट्टी का तेन जलाकर वातावरण को सुगन्धित नहीं बनाया जा सकता, उसी तरह मायादि दोषयुक्त साधनों के सहारे उच्च मर्याद को प्राप्त नहीं किया जा सकता । वातावरण शुद्धि के लिए लोग सुगन्धित द्रव्य जलाते हैं, तथैव उत्तम साध्य के लिए साधनों का होना अनिवार्य है, जनसेवा जैसा सार्वजनिक क्षेत्र हो, या राजनैतिक, सामाजिक वांन्ति हो या व्यक्तिगत साधना, सर्वत्र मायादि रहित शुद्ध साधनों के होने पर सत्य की प्राप्ति होगी । अधिक क्षेत्र में भी नीति धर्मयुक्त पुरुषार्थ न करके लोग धुआ, मट्टा, खोरी, मिनाबट, तम्करी, गुनाफा खोरी आदि मायायुक्त अनुचित उपायों को अप्रमाने हैं, वे स्व पर-वत्पाण एवं आत्मशुद्धि के मार्ग में स्वतः रोड़ा अटवाने हैं, स्वयंसेव माया जनित उपायों का आश्रय लेकर या झूठे आहम्बर आदि से प्रसिद्धि एवं बाह-बाहो प्राप्त करके कुछ अमों के लिए भले ही चमक जाएँ, पर वह तो ‘चार दिनों की चाँदनी, फिर अछेरी रात’ की तरह अस्थायी चमक है, बुझते हुए दीपक की तरह एक बार की चमक है, फिर तो अन्धकार एवं पतन है । अतः जीवन का उत्थान चाहते हैं, आत्मा की विशुद्धि की अपेक्षा है, स्वतन्त्र की साधना में माध्य—मोक्ष प्राप्त करने की तत्पन्न है, तो मायारहित जीवन बनाइये, वही उन्नत जीवन है । मायायुक्त जीवन तो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सांसारिक मजीब-निजीव पदार्थ आदि की गुलामी और परतन्त्रता की ओर ही ले जाता है, इनकी गुलामी से मुक्त शुद्ध स्वतन्त्र जीवन तो मायारहित होने पर ही प्राप्त होता है । -



यहाँ मनुष्यों को नष्ट करने का रस्ता के लिए बिना-बिना-कर का दुहरा कर बुनाया जाता है, वह नरक है ।

आदम के बड़े इच्छित लोग नरक को दण्ड समझते हैं, वे कहते हैं कि लोगों को डराने के लिए कुछ बुद्धिमानी ने नरक काद गढ़ बना है और अब-नरक नरक का होना बना कर उन्हें साधन के काम करने में रोखते हैं । परन्तु नरक न होना तो हमने भयंकर पापकर्म करने वालों को, जिनको यहाँ किसी प्रकार की सजा नहीं मिली है, दूनाग लोक न हो तो सजा कहाँ मिलेगी ? मनुष्य की जीवन यात्रा केवल इस लोक में ही तो समाप्त नहीं हो जाती, वह अनेक जन्मों तक चपती है, उन जन्मों की यात्रा में कूरकर्म करने वालों में से जिन लोगों ने भयंकर कूर कर्म किये हैं, उन्हें यहाँ पड़ाव करना पड़ता है, वह है नरक । नरक एक ऐसा पड़ाव है, जहाँ उन कूर कर्मियों को अपने कुशलों की भयंकर सजा मिलती है । अगर ऐसा न हो तो मरकर्म करने वाले और दुष्टकर्म करने वाले दोनों का जन्म एक ही गति में होगा । फिर मरकर्म करने और दुष्टकर्म छोड़ने की प्रेरणा कैसे मिलेगी ? यह तो सारी अव्यवस्था हो जाएगी और कर्मफल का सिद्धान्त ही झूठा हो जाएगा । इसलिए नरक का अस्तित्व वास्तविक है, गल्प नहीं है । जो लोग ऐसे साधन के काम करते हैं, जिनसे दूसरों की प्राण-हानि होती हो, दूसरों का दिल दहल जाता हो, दूसरों के मन में भयंकर प्रतिक्रिया उत्पन्न होती हो, अनेक जीवों का गहारा होता हो, जैसे घोरी, काका, लूट, बलात्कार, भ्रष्टार, पशुवध, मांसाहार, पक्षेग्रिपवध, गुप्त अपनी क्रूर महत्वाकांक्षाएँ, आदि सब नरक-नामन के कारणभूत साधन हैं ।

सभी धर्मों में नरक को एक या दूसरे प्रकार से, अपने-अपने षष्ठ की भाषा में माना है । सभी धर्म साधनों में क्रूर कर्म करने वालों के लिए नरक का विधान किया गया है ।

परन्तु जो लोग यह समझते हैं, कि नरक मिलना होगा, जब मिलेगा या नहीं भी मिले, यहाँ हम बेरोकटोक साधनिक क्रूरकर्म करते रहें, उनसे हमारा क्या बिकड़े जाता है, यहाँ तो कोई हमें मरक नहीं दे सकता, वे लोग भी भयंकर भय में हैं । जो यहाँ नरक के काम करते हैं, उन्हें भविष्य में तो नरक मिलने ही माना है, परन्तु यहाँ भी प्रायः उन्हें मारकीय जीवन बिताना पड़ता है । उनका जीवन इतना तुल्य, रोग, शोक और भय से आबाध हो जाता है कि उन्हें इस जीवन में ही नरक की सी पीड़ा—असह्य मानना और बेचना मिल जाती है । धन, कोरी, काज, बलवा माधन और सुविधाएँ होने हुए भी वे मारकीय जीवन का अनुभव करते हैं, या तो जिन में गह-गह कर मरते हैं अथवा अगाध रात में रिग-रिग कर इस लोक में बिदा होते हैं अथवा कुटी तरह में उनकी मीन होती है ।

अतः ऐसी यात्रा एवं पीड़ावाचक नरक-मयी इमी जन्म में ... ही है अथवा मिल जाती है । एवं पाश्चात्य विचारक कहता है





वह मोटा नहीं, बाला किरानी था। प्रारम्भ में वह एक हाकवाने में बाकू था। पड़ो-  
गियों के जानवर घुरा लेना, और घटकर जाना, उनका प्रारम्भिक कार्यक्रम था।  
बाद में उसने अमीरों की शराब, जुआ और सड़कियाँ गानाई करने का धन्दा अप-  
नाया। एक बुग्यान तम्बर मैकमीन के साथ मौठ-मौठ करके वह राजनीति में घुसा  
और हथकण्डेबाजों के सहारे सामनायन बन गया। उसने विभिन्न प्रकार की तिकडम-  
बाजी करके करोड़ों की सम्पत्ति कमायी और पानी की तरह बिनासित एव रंग-  
रेनियो में बहा दी। उम राज्य में चल रही अपराधी प्रवृत्तियों में उसका छिपा  
हाथ रहता था और उसमें वह भारी कमाई करता था।

महत्वाकांक्षी और मोर्ची नुजिलो ने संकेत करके अपने राज्यों में गिफें दो  
नारे लिखवाये—एक ईश्वर का, दूसरा नुजिलो का। वह अपने राज्य में अपने को  
ईश्वर के समकक्ष कहलवाता था। एक बार नुजिला ने समाचार पत्रों में अपनी  
मृत्यु का समाचार छपा दिया, फिर कुछ दिनों बाद वह प्रकट हो गया। उसकी  
मृत्यु पर जिन-जिन लोगों ने खुशियाँ मनाई थी, उनका पता लगाकर उसने उन सभी  
लोगों को मौत के घाट उतरवा दिया।

सामान्य लोग के साथ उसकी विद्वान महत्वाकांक्षा का सबसे नुगस कुकृत्य  
कुछ ही पलों पहले समार ने जाना, जो नादिरशाह, चगेजखान और हवाकू के कुकृत्यों  
की भी मान कर गया।

बान तनिह-मी थी। नुजिलो की एक रत्न 'डोना आयसवेल माये' ने उसे  
सनाया मारा कि 'उमके कृपि काम के पेड़ों की पत्तियाँ खरवाहे लोग अपने जानवरों  
को खरा देने हैं और वह शासक होने हुए भी उन्हें रोक नहीं पाता।' व्यंग करारा  
था। नुजिलो ने उनी क्षण रुष्ट प्रेमिका को आश्वामन दिया कि 'वह खरवाहों के  
पूरे गाँव का ही अस्तित्व मिटा देगा।' दूसरे दिन वह सेना की साथ लेकर उस गाँव  
'ऊआनामि' पहुँचा और वहाँ के समस्त लोगों नागरिकों का कत्ले आम करा दिया।  
मर-मारी, बानक-बूट, सभी पक्षों से पकड़कर लाये जाते और रस्सों से बंधे उन  
लोगों को भोयरी कुन्हाड़ियों से सड़की चीरने की तरह काट डाला गया। गिरजाघर  
में छिपे हुए अनाथ बालकों तक को उसने नहीं छोड़ा। वहाँ के निवासी कुल २५००  
लोगों का उसने अपनी क्रूर महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए सफाया करवा दिया।  
एक भी जीवित नहीं बचा। वह सारा इलाका लाशों में पट गया और जमीन रक्त  
रहित हो गई।

इस प्रकार २५०० निरिह निरपराध मनुष्यों के नृपम वध की मिसाल कम से  
कम इस जगहों में तो नहीं मिलती।

कहते हैं, उसने अपनी छोटी-सी जिन्दगी में अपने बालों में भी अधिक सख्या  
में कुहम्य बिये होंगे। ये किसी अभाव या संकट के कारण नहीं, किन्तु अपनी विद्वान  
महत्वाकांक्षा एवं सोमवृत्ति में प्रेरित होकर बिये थे।



वह गीरा नहीं, बाना किरानी था। प्रारम्भ में वह एक हाथवाने में बाबू था। पड़ोसियों के जानवर चुरा लेना, और घटकर जाना, उनका प्रारम्भिक कार्यक्रम था। बाद में अपने समीरों को शाक, जुआ और तड़कियाँ मण्डाई करने का धंधा बनाया। एक कृत्यान्त तस्वर मैक्सीन के साथ मोंट-मोंट करके वह राजनीति में घुसा और ह्वरग्रेबाजों के महारे सामनापन बन गया। उनमें विभिन्न प्रकार की तिकड़म-बाजों बरके बरोडों की सम्मति बमानों और पानी की तरह खिलासिता एवं रण-रेलियों में बहा दी। उस राज्य में चल रही अपराधी प्रवृत्तियों में उनका छिना हाथ रहता था और उनमें वह भारी बमाई करता था।

महत्वाकांक्षी और लोभी नुजिलो ने संकेत करके अपने राज्य में गिरफ्तारों के निम्नश्रेणी—एक ईश्वर का, दूसरा नुजिलो का। वह अपने राज्य में अपने को स्वर्ग के समरक्ष कहलवाना था। एक बार नुजिला ने समाचार पत्रों में अपनी खुद का मयाचार छपा दिया, फिर कुछ दिनों बाद वह प्रकट हो गया। उसकी खुद पर त्रि-त्रि लोगो ने सुविधा मनाई थी, उनका पता लगाकर उसने उन सभी लोगों को मोन के घाट उतरवा दिया।

सामान्य लोग के साथ उसकी विद्वत महत्वाकांक्षा का सबसे नृशम कुत्स्य छ ही क्यों पढ़ने समार ने जाना, जो नादिरगाह, खेजेरवा और हनाकू के कुत्स्यों ने भी मान कर गया।

बान तनिज-मो थी। नुजिलो की एक रत्न 'होना आपसवेल माये' ने उसे ज्ञात करा कि 'उमके कृपि फार्म के वेडों की पत्तियाँ चरवाहे लोग अपने जानवरों के चरा देने हैं और वह शाक होने हुए भी उन्हें रोक नहीं पाता।' व्यंग्य करारा। नुजिलो ने उसी क्षण कृपि प्रेमिका को आश्वासन दिया कि 'वह चरवाहों के रें गांव का ही अस्तित्व मिटा देगा।' दूसरे दिन वह सेना की साथ लेकर उस गांव 'आनामि' पहुँचा और वहाँ के समस्त नीचो नागरिकों का कत्ले आम करा दिया। गन्तारी, बाजक-बूड, सभी घरों में पकड़कर लाये जाते और रस्सों से बंधे उन लोगों को भोवरी बुग्हाड़ियों में लकड़ी कीरले की तरह काट डाला गया। गिरजाघर छिने हुए अबोड बाजको तक को उसने नहीं छोड़ा। वहाँ के निवासी कुल २५०० लोगों का उसने अपनी क्रूर महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए नकावा करवा दिया। व भी जीवित नहीं बचा। वह सारा दाना-मांशों में पट गया और जमीन रक्त त्रि हो गई।

इस प्रकार २५०० निरिद्ध निरपराध मनुष्यों के नृशम वध की विमाल कम से म रण कनाकरी में तो नहीं मिलनी।

बहुते हैं, उमने अपनी छोटी-सी त्रिन्दनी में अपने बानों में भी अधिक शक्या पुण्य बिंदे होगे। वे किसी अभाव या संकट के कारण नहीं, सिंगु अपनी विद्वत



“इच्छा बटुविहा लोये, जाये घड़ो किन्दिस्तानि ।

सम्हा इच्छामनिच्छाए, जिगित्ता गुहमेघति ॥”

ससार में इच्छाएँ अनेक प्रकार की हैं, जिनमें बंध कर जीव बहुत बन्धन—  
दुःख पाता है । इसलिए इच्छा को अनिच्छा में जीन कर ही मनुष्य मुक्त पाता है ।

अनिच्छा से इच्छाओं को कैसे जीना जाये ? यह सवाल आज का नहीं, सनातन  
है । हर युग का मनुष्य इस पर विचार करता रहा है । भगवान् महावीर ने उत्कृष्ट  
साधकों के लिए बनाया—

‘इच्छा तोम न सेविस्सा’



“इच्छा बहुविधा सोये, जाये बढो विविधसि ।

तन्हा इच्छामणिच्छाए, जिगित्ता मुग्धेघति ॥”

ससार में इच्छाएँ अनेक प्रकार की हैं, जिनमें बंध कर जीव बहुत बनेश—  
दुख पाता है । इगलिए इच्छा को अनिच्छा में जीत कर ही मनुष्य मुक्त पाता है ।

अनिच्छा से इच्छाओं को कैसे जीता जाये ? यह सबान आज का नहीं, सनातन  
है । हर युग का मनुष्य इस पर विचार करता रहा है । भगवान महावीर ने उत्तुष्ट  
साधकों के लिए बनाया—

‘इच्छा सोम न सेविज्जा’

“गायक को इच्छा और सोम का सेवन नहीं करना चाहिए ।” गृहस्थ साधकों  
के लिए उन्होंने ‘इच्छापरिणामत्रय’ बताया, क्योंकि उसमें इनकी सामर्थ्य नहीं होती  
कि वह सारे परिवार को साथ लेकर इच्छाओं पर सर्वथा विजय प्राप्त कर सें ।

इच्छाएँ जब भी आएँ, तब भी उसे मन को समझाना होगा, मन के विरुद्ध  
सम्पादक भी करना होगा, तभी वह इच्छाओं पर अनिच्छा द्वारा विजय प्राप्त कर  
सकेगा ।

एक मुमलमान को सामारिक पदार्थों में विरक्ति हो गई । उसे सभी वस्तुएँ  
रखना भारका मानुम होने लगा । उसने सोचा कि वस्तुएँ पास में रहेगी तो फिर  
इच्छा जयेगी, उनसे उत्तुष्ट वस्तुओं को या उनमें अधिक वस्तुओं को पाने की, इसलिए  
इन वस्तुओं पर से ही समस्त छोड़ दिया जाए तो अच्छा है । अतः उसने घर में से  
बर्तन, कपड़े, गहने आदि सब चीजें बाहर निकाल कर एक जगह डेर कर दीं । फिर  
उसने पाचनों को बुलाकर उनको वे सब चीजें बाँट दीं । अपने पास उसने फूटी कौड़ी  
भी न रखी ।

फिर उसने अपने मन में कहा—“अरे मन ! अब तेरे पास कुछ भी नहीं  
रहा । अब तू बिलकुल निर्वचन और अकिंचन हो गया है । अब तू किसी भी वस्तु की  
इच्छा मन करना । अगर इच्छा करेगा भी तो वह पूर्ण नहीं होगी । क्योंकि अब न तो  
एक भी पैसा पाम में है और न ही कोई साधन ।” मुस्लिम विरक्त के मन ने स्वीकार  
कर लिया कि वह अब कोई भी वस्तु नहीं चाहेगा ।”

पर मन आतिर मन ही टहरा, बड़ा चचल, उतावला और उद्विग्न । वह कहाँ  
नर स्थिर रह सकता था । जब मुस्लिम को शाम तक भोजन नहीं मिला और वह  
शाम को नगर के बाहर विधाम के लिए बैठा तो मन ने इच्छा की—“कहीं से  
खाबल दाल मिलता तो पेट भर लेता ।” परन्तु पास में फूटी कौड़ी भी नहीं थी,  
इसलिए मन को इच्छा पूरी न हुई ।

कुछ ही देर बाद एक गाड़ी वाला आया तो उसने उससे पूछा—“एक बैल  
का एक दिन का किराया तुम्हें कितना देना पड़ता है ?” गाड़ी वाले ने कहा—“तावे  
का एक सिक्का देना पड़ता है ।” विरक्त मुस्लिम बोला—“भाई ! इस बैल के बदले





है कि मालूम होता है घन पर उसके आधिपत्य के बजाय घन ही उन पर आधिपत्य जमाए बैठा है ।”

सोम का काम ही है कि वह मनुष्य को इच्छाओं की पूर्ति के लिए बार-बार उसेजित करता है । वह मौनान की तरह जब मनुष्य के मन में घुम जाता है तो मन पर उसका कब्जा हो जाता है, फिर वह मन को मनन और उच्छ्रान्त इच्छाओं की पूर्ति के लिए आदेश देता रहता है । वह अमंतीय की भांग मड़काना रहता है, मानव-मन में ।

सोम किस प्रकार असन्तोष की आग लगा कर मन को इच्छा की पूर्ति के लिए उकसाना है ? इसके लिए मुझे एक रोचक उदाहरण याद आ रहा है—

एक पहाड़ पर अनार का बगीचा था । तलहटी से अनार के पेड़ दिखाई दे रहे थे । अनार के पत्तों से लुकी हुई टहनियाँ भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी । अनारों को देख कर वहाँ घूम रहे एक भक्त के मुह में पानी भर आया । उनके मन में अनार खाने की प्रबल इच्छा जागी । मन की उद्दाम कामना की पूर्ति के लिए अनार खाने के सोम ने मन को विवश कर दिया, त्रिगसे घर की ओर बढ़ते हुए कदम पहाड़ पर पड़ने के लिए बाध्य हो गए । कामना-आकांक्षा को लिए वह पहाड़ पर पहुँचा वहाँ भी पक्की अनारों को देख वह अपने लोभी मन को रोक न सका । बगीचे के सरदाक के सामने उसने अपनी इच्छा व्यक्त की और उससे अनार खाने की इजाजत मांगी । बगीचे के सरदाक ने भवा आदमी समझ कर उसे अपनी इच्छानुसार अनार खाने की स्वीकृति दे दी । अब क्या था ! वह बगीचे में घुसा और एक पेड़ पर अच्छी सी पक्की अनार देख कर तोड़ी और उसे चाकू से काट कर खाने लगा । पर वह अनार खट्टी थी । इसलिए खा न सका, उसकी मनोकामना पूर्ण न हुई । वह परेशान होकर बगीचे में इधर-उधर घूमता रहा । उसे अपनी इच्छानुसार अनार मिल नहीं रही थी, इसलिए हैरान था । उसके चेहरे पर परेशानी स्पष्ट झलक रही थी । उसी बगीचे में एक सन्त एक पेड़ की छाया में ईश्वर भजन में मग्न बैठा था । उसके पाव पर मखिलियाँ भिनभिना रही थीं, उन ओर उसका ध्यान भी नहीं जाता था । वह तो भक्ति के संवीन में मग्न था । मन्त्र को देख कर इस आपत्तुक भक्त ने नमस्कार किया और पूछा—“ये मखिलियाँ आपको काट रही हैं, आप इन्हें उड़ा कर कष्ट मुक्त क्यों नहीं होते ?” सन्त ने इस भक्त को नीचे से बल कर पहाड़ पर बगीचे में कष्ट कर के आते, अनार खाने की सातसाबश सरदाक से अनार पाने की मांग करते और अपनी इच्छानुसार अनार न मिलने से परेशान होकर इधर-उधर भटकते हुए भी देखा था । अतः सन्त ने सम्भीर स्वर में कहा—“मुझे कष्ट क्यों होगा ? मेरा मन तो भक्ति की धारा में बह रहा है । ये मखिलियाँ तो पाव के मवाद को खा रही हैं मुझे तो नहीं खा रही हैं ? हो सकता है, इससे मारीर को कुछ पीड़ा हो, पर मेरे मन और आत्मा को तो पीड़ा नहीं हो रही है । वह तो भक्ति रस में डूब चुके हैं



होनी है। इन्हें जन्म, मरण, त्राहता और मृत्यु की उमा दी जानी है। पहली एण्डा का मुख्य प्रेरक बन मोम होता है, दूसरी का काम और तीसरी का अहंकार मिथित श्रेष्ठ। ये तीनों एण्डाएँ जैनधर्म की भाषा में महेच्छाएँ कहानी हैं। गीता में इन तीनों के प्रेरक बलों को नरक के द्वार कहा गया है—

त्रिविध नरकस्येवं द्वारं मातनमात्मनः ।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतन् प्रयं स्पन्देत् ॥

ये तीन नरक के द्वार हैं, जो आत्मा के गुणों नष्ट करने पाने हैं। वे हैं— काम, क्रोध तथा लोभ। इसलिये आत्मार्थी को इन तीनों नरक द्वारों का रक्षण करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि मृच्छा, कामना और अहंता के रज में प्रविष्ट हुआ निवृष्ट इच्छाओं का अतिवाद मन धीरे को कनुविन कर देता है, उसे भय और शोक से आशान्न कर देता है, इसलिये नरक-स्थान बन जाता है। वे ही फिर उच्छ्वस्व महेच्छाएँ मजामक बीमारियों की तरह अनेक बुराइयों को लाकर मन और आत्मा के गुणों का नाश करके सर्वनाशी मिट्ट होनी हैं। वितर्पणा, पुत्रैषणा और लोभैषणा की दुप्रवृत्तियाँ विनित्तं को बुरी तरह जर्जर कर देती हैं।

धन के सम्बन्ध में असन्तोष लोभ बनकर फूटता है, कामना का असन्तोष काम कहलाना है और स्वामित्व या अहंपूर्ति का असन्तोष मोह कहलाना है। अहंकार की पूर्ति में वही नुटि रह जाने का असन्तोष क्रोध के रूप में भी फूटता है। इन तीनों प्रकार के असन्तोष से मानसिक पाप एवं दुष्कर्म अपना घोषण पाते हैं। परिवारों का मधुर मेन-मिचार और स्नेह इसी के कारण नष्ट होता है। दाम्पत्य जीवन की प्रेम-प्रतीति में पत्नीता लगाने वाले ये ही तीन दुष्ट असन्तोष हैं। शान्ति और प्रेम के साथ मधुर जीवन पानन करते हुए आनन्द की सरिता बहाने और स्वरूप कल्याण करने में संलग्न होने की अपेक्षा देन-केन-प्रकारेण अन्याय, शोषण एवं अनीति से धन इकट्ठा करने की हविस में देश-विदेश मारे-मारे फिरने और प्रेत-पत्नी की तरह निरन्तर व्यस्त और व्यथित रहने में मह दुष्ट असन्तोष ही एकमात्र कारण हो सकता है।

इस त्रिविध असन्तोष को प्रपत्ति का प्रेरक बन मानना सर्वथा भूल है। उसने मृच्छा, कामना और अहंपूर्ति रूप उच्छ्वस्व आसुरी इच्छाओं को उत्तेजना तो अवश्य मिलती है पर उनकी पूर्ति बढ़ावि नहीं हो सकती क्योंकि उद्धम और असन्तोषी व्यक्ति में शान्ति, आत्मनिरीक्षण, आवश्यक धर्म और निरन्तर अभ्यास की लगन नहीं होती। वह बावला तो आज ही, अभी ही सब कुछ पाने की मृच्छा में सब पर हावी होने का उपक्रम करता है। उसे इनकी कुरूपता नहीं, जो आत्मनिरीक्षण करे और उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचने के लिए आने अन्दर उन महापुरुषों जैसे सा गुणों को बढ़ाएँ और जब वह मर्त्यापी हो जाएगा, तब तो आत्म-पराधन व्यक्ति व तरह इन आसुरी इच्छाओं—महत्वाकांक्षाओं को बिलकुल पगन्द नहीं करेगा। उन आध्यात्मिक उन्नति की और सद्गुणों को बढ़ाने की महत्वाकांक्षा होगी, जिससे निः







अर्थ और वैभव की असीम मृणा में संलग्न व्यक्ति अनुचित उपायों में घन बर्बाद उल्लास उपयोग विनाशिता में, दुर्धननों में, विविध प्रदर्शनों में, विवाहादि के प्रसंग पर विनोदसर्चों में, कुरुद्विषों के पोषण में बर्तते हैं। इस प्रकार धन के अर्जन और दुर्धन्य में जनसाधारण में ईर्ष्या और अगम्योप पैदा होता है, गरीबों-अमीरों के बीच असमानता बढ़ती है, अपने बाव-बच्चों को उत्तराधिकार में बिना धर्म के मुल का मान देकर उन्हें निष्कर्ष, आकारागदं, दुर्धननी एवं उदात्त बनाये जाने हैं। वास्तव में इस प्रकार का धन गन्तव्य को देखकर वे उन्हें परावर्तनी और अनाहिज तथा हीनवृत्ति का मिश्रण बनते हैं। इससे वे बालक परस्पर दगड़ते हैं, मानसी, अहकारी और दुर्धननी बनते हैं। ये सब सुराईया वित्तपणा में मलान व्यक्ति पैदा करते हैं। यह मृणा उनके लिए ही नहीं, सारे समाज के लिए घालक सिद्ध होती है। इसलिए वित्त को नहीं, वित्तपणा को निन्द्य बनाया गया है।

मगध गणराज कोणिक के पास किम बात की बनी थी? उसके पास राज्य था, धन था, गुप्त के सभी साधन थे, सभी प्रकार की सुविधाएँ थी। परन्तु वित्तपणा में झल होकर अपने हल और विहल कुमार नामक भाइयों को अपने एक में मिले हुए न्यायपुक्त हार और विचानक हाथी को प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा उसके दिल में बनी।

बात यह हुई कि कोणिक चम्पानगरी को अपनी राजधानी बनाकर राज्य कर रहा था। एक बार उसके छोटे भाई हल और विहल विचानक हाथी पर बैठकर तथा हार आदि आभूषण पहनकर सैर करने जा रहे थे, तभी कोणिक की रानी पद्मावती की दृष्टि उन पर पड़ी। उसके मन में ईर्ष्या की आग भस्मक उठी। उसने कोणिक को उत्तेजित किया कि यह हार और हाथी तो आपके पास बौभा देते हैं, इनके पास किम काम के? कोणिक ने पहले तो बहुत समझाया कि ये तो उनके हक के हैं, परन्तु पद्मावती हठ ठानकर बैठ गई कि हार और हाथी किसी तरह से उनसे लेकर मुझे देगे, तभी प्रसन्न रहूँगी।" इस पर कोणिक ने हल-विहल से हार और हाथी ला देना स्वीकार किया।

दूगरे ही दिन कोणिक ने एक राजा के नाते अधिकारपूर्वक हल-विहल कुमार से हार और हाथी माँगे, तो उन्होंने अपनी स्थिति दुर्बल जानकर रातोंरात ही अपना अन्तपुर, हार-हाथी आदि सब वस्तुएँ लेकर चम्पानगरी से कूच किया और विशाला-नगरी में अपने मामासह महाराजा बेदा की शरण में पहुँच गये। उन्होंने शरणागत एवं दीहित के नाते उन्हें रस दिया।

इधर कोणिक को पता चला तो उसने कोपायमान होकर बेदा महाराजा के पास यह मन्देश लेकर दूत भेजा कि हार, हाथी एवं हल-विहल कुमार को वापस माँगे, अन्यथा आपका राज्य आदि भी छीन लिया जायेगा।" बेदा महाराजा ने उन्हें वापस भेजने में इन्कार करके दूत को लौटा दिया। इस पर कोणिक राजा अपार









सरीके हैं। उक्त, सम्मान, परिवार का परोक्ष लाभ और धन का वृद्धि जैसे सभी को यदि केवल स्ट्रेज जीवन, बाबावना, सत्पाकाजी एवं मेतादीरी के आधार पर सारे मोन में मरीदा जा सकता है तो उम्मे जीवन छोड़ना चाहेंगा ? बगना डकार जाने और हिलाव बिताव में गोनमान करने की संख्याओं में पूरी गुनाइन रहती है। अधिका-रियों को उसका लाभ मिलता है। सेवा क्षेत्र को वसुधित करने में सबसे विधानक प्रवृत्ति बायंजनिओं की पद-निष्ठा, अधिवार-निष्ठा और मत्नी बाहवाही मूटने की हेतु मत्नीवृत्ति ही प्रधान कारण है। सोईयणा प्रेरित सत्पाकधिन मोक सेवी साधियों को मिलने, उठाइने में मेवर हत्या कराने तथा के मनेकां खण्ड तरीके मराने है, मत्नी तनिक की ममोतिष्ठा एवं स्वायंनिष्ठा के कारण सायंजनिव संस्था को बदनाम कर देते हैं। सायंजनिव जीवन में तो इस तरह मोईयणा प्रेरित आगाधापी, छोना सपटी, मूट सवोट बनती ही है। हमारी रजवाडी में ऐसे कारणोंमें प्राचीन काल में हुए हैं।

अनः ऐयथाओं के इस नारणीय जीवन से बचा जाए, इस दृष्टि से, सावधान करने हेतु नीतम महवि कहते हैं—

“सुदा महिष्ठा मरयं उवेति ।”



हम अपने के रूप में भी बहुत बड़ा बनाना है, अपने को बिन। हमारे को बहुत ही उपरान्तर के माना हुआ है, और फिर वह हमारे के बाहराने से रह कर से बना है। इस तरह हमारे के मन बहुत और बिन दोनों ही है।

कोपी मन से कोष बिन बरताता है

हमारे अपने का मनो जब भी हमारे के मनो से अपने का मनो के अपने ही, वह वह मन से कोष से बना, मन से उसके प्रति रोष और दुःखद्वेष विचार बने, मन से बहोना और धुन का भाव से बना, दूसरी विचारों का कोई विचार न करे, अपने ही स्वार्थ और मनन की दृष्टि से विचार करता है तो मन से आना हुआ वह मन दूसरी के प्रति मन से उतर बरताता है।

एक दूसरा व्यक्ति है, उसको दृष्टि अनुत्तमयी है। वह सारे सत्ता के प्राप्ति को अपने मन से देखता है। उसके मन से दूसरे प्राप्ति के या दूसरे अनुत्तमयी के प्रति दया, क्षमा, क्षमाता और अहिंसा की भावना है, उसका विचार है, ये भी जीव हैं भी जीव, अपना दण्ड बनाकर जीव, इनको जीव की प्राप्ति देकर मैं अपना जीवन जीऊँ, उनके द्वारा कभी अकार विदे जाने पर भी वह कोष न करके जीवों के स्वभाव का विनय कर शमा या सहिष्णुता धारण करता है। ऐसा व्यक्ति दूसरी के प्रति मन से अनुत्तम बरताता है।

सम्राट् धावनी नगरी के जितानु राजा का इकलौता पुत्र था। एक उषी बहन थी, जिसका नाम था पुरंदरधरा। कुम्भकार बटक नगर के राजा दण्डक के साथ उसकी शादी की गई। दण्डक राजा के यहाँ पापक नामक पुरोहित था, वह नैमित्तिकवादी था। एक बार किसी कारणवश दण्डक राजा ने जितानु राजा के यहाँ पापक को भेजा। पापक ने जितानु की राजसभा में धर्मधर्मा के शिलसिले में अपनी नैमित्तिक विचारधारा का प्रतिपादन किया, किन्तु वही उपरिष्ठ स्वार्थक राजकुमार ने जैनमिथ्या की दृष्टि से उस विचारधारा का मुक्तिपूर्वक खण्डन किया, जिससे पापक को निरंतर होना पड़ा। अपने अह की चोट लगने से पापक के अपने मन में स्वार्थ के कुमार के प्रति अत्यन्त कोष का विष फैल गया। किन्तु वही उसकी एक न बनी। फलतः अपना काम निपटाकर वह वापस अपने नगर की लौटा।

एक बार विचारण करने-करते जीगर्ष तीर्थंकर मुनिमुण्ड स्वामी का पदार्पण धावनीनगरी में हुआ। तीर्थंकर प्रभु की धर्म देशना सुनकर स्वार्थ कुमार को समार में विरक्ति हो गई। उन्होंने ५०० पुरवों के साथ प्रभु में मुनिदीक्षा ली और उष विहार करने लगे। इसी दौरान उन्होंने जैन सिद्धान्तों का गहन-अध्ययन किया। तीर्थंकर स्वामी ने स्वार्थ मुनि की योग्य जानकर, ५०० बना दिये।

राजधर्माध्य ने प्रभु के चरणों में सार्प  
यन् ।  
'मे तो मैं अपनी सामाजिक









## बचन में भी प्रोप्रियिज उगमना है

इसी प्रकार बचन में भी प्रोप्रियिज ध्याना हो जाता है, तब मनुष्य अपना आपा भूल जाता है। प्रोप्रियिज बचन हितने मर्यादित, बटु, उग्र और अमन्य होने हैं, उसमें विनाश अनर्थ हो जाता है, स्व-पर की हितनी हानि और बैर-विरोध की परम्परा बढ़ती है, यह तो भारतीय इतिहास को उठाकर देखने में आप स्वयं जान जाएंगे। यही मति का भी यहो कहना है—

“अमृत ऐसे बचन में, रहितन रिग की गाँव।

जैसे मिसरिह में मिनी, निरम दाँत की फाँव ॥”

जिम्मे भुगवन्त में वाणी का अमृत रस शरने के बढे प्रोप्रियिज का विष उगना जाता हो, मरणा तो, वहाँ बचन में प्रोप्रियिज का विष धोलकर नरक में जाने की तैयारी कर ती। पातक्य महाभाष्य में टीक कहा है—

“एक शब्दः शृष्ट् प्रमुक्तः स्वर्गं लोके च कामयुक् भवति ।” एक शब्द का यदि विवेकपूर्वक हित बुद्धि से प्रेम और शान्ति के साथ प्रयोग किया गया है तो वह स्वर्ग लोक की ओर ले जाता है, इस लोक में आपके लिए वह वाणी कामयुक्त-वेनु-सी हो रही है, आपके जीवन में सोई हुई विराट् चेतना को जगा रही है। किन्तु हमने गिरती यदि आप अपराध, बटु शब्द एवं मर्मस्पर्शी बचन बोलते हैं, दूसरी की लड़ने के लिए आप उकसाते हैं, या वाणी से बड़ा सुभोने हैं, आप लगा देने वाले बचन बोल रहे हैं, तो समझ लीजिए वह बचन आपको नरक की ओर ले जा रहा है। ऐसे शब्द आपके मुँह की भी गन्दा करते हैं दूसरी में भी उसकी छपकर प्रतिक्रिया उगाने हैं। प्रोप्रियिज बटोर मर्मस्पर्शी एवं बटुवाणी विष का काम करती है। वाणी मिनी हो आप को अमृतरस घरसाने के लिए, लेकिन आप वाणी में प्रोप्रियिज मिलाकर बरसाने लगें हवाहस विष। हम देखते हैं कि कई परिवारों में जग जरा बात पर प्रोप्रियिज में आँतें लाल हो जाती हैं, मोहे लन जाती हैं, और फिर शस्त्रों से आपस में सहाई भी टन जाती है। इस विष को खाने पर तो मनुष्य केवल इसी जन्म में थोड़ी-थोड़ी देर में स्वप्न हो जाता है। परन्तु प्रोप्रियिज विष को मन में—दिवाग में प्रविष्ट कराने पर, बचन द्वारा उसे उगमने पर तथा काया की चेष्टाओं द्वारा उस विष को कार्यक्षम में परिणत करने पर तो एक जन्म नहीं, अनेक जन्मों तक मनुष्य को उनी गति और धोनि में भटकना पड़ता है।

मुक्क सोम नवपरिणीत था और अपनी बत्ती की सेने के लिए समुदाय आपा हुआ था। किन्तु उसकी मुनि दर्शन का नियम था, इसलिए गाँव में विराजित आचार्य धरदर के पास अपने माने के साथ बह आया। माने ने आचार्य के पास फरार में लोभ की ओर इशारा करते कहा—“गुरुदेव ! मैं यह कह रहा हूँ कि मैंने मुँह लीजिए ।” लोभ ने चारा कि वह यह सब मेरा । रहे ? किन्तु आचार्य



आगे अँधेरा आदि सब प्रांशविष जन्म उपद्रव है। क्रोधकारी विष के कारण शरीर में अनेक व्याधियाँ लग जाती हैं और दिनानुदिन मनुष्य रीति होकर अन्धकार में बान के माल में बना जाता है। प्रसिद्ध दार्शनिक 'मोना' कहते हैं—क्रोधकारी विष मनुष्य को मद्यमन की तरह विचारशून्य, दुर्बल एवं मजबूत की तरह शक्तिहीन बना देता है। दुर्भाग्य की तरह यह जिनके पीछे पड़ता है, उसका सर्वनाश करके ही छोड़ता है। क्रोधजन्य महाव्याधि का शरीर और मन पर जो दूषित अंगर होता है, वह जीवन को पूरी तरह अमयन बना देता है। अशान्ति, मार्गका, आवेग आदि विचार उसे घेरे रहते हैं। पाश्चात्य विचारक Otway (ऑटवे) कहता है—

"It is in my head, it is in my heart, it is everywhere, it rages like a madness and I most wonder how my reason holds."

यह काध मेरे मस्तिष्क में है, यह मेरे हृदय में है, यह सर्वत्र घुम गया है; यह पावन पन की तरह भड़क उठता है, और मैं बहुत आश्चर्य करता हूँ कि यह मेरी तरफ शक्ति को कैसे पकड़ लेता है !"

क्रोध विष को न रोकने से भयंकर हानि

क्रोधकारी विष जब मन, वचन और बाया में फैलने लगे कि तुरन्त उसे रोक देना चाहिए। जो इस विष को फैलने में रोकता नहीं है, उसे भयंकर बन्ध उठाना पड़ता है।

क्रोधविष को न रोकने से स्कन्दकाचार्य अग्निबुमार बन गये थे, यह मैं पहले बता चुका हूँ। इंद्रपायन ऋषि ने यादवों पर भयंकर क्रोध करके निदान कर दिया था, कि मैं यादवों और द्वारिका का विनाश करने वाला बनूँ।" फलतः वे अग्निबुमार देव हुए। द्वारिकानगरी भस्म कर दी। श्रीकृष्ण आदि कुछेक यादवों को छोड़कर अन्य समस्त यादवों का सर्वनाश कर दिया। साराण यह है कि क्रोध के वश होकर इंद्रपायनऋषि ने अपनी तपस्या का फल खो दिया। त्रिपृष्ठ वामुदेव के भव में पगवान् महावीर ने शय्यापामन के कानों में अत्यन्त क्रोध विष से व्याप्त होकर नमोऽर्घ्यं शोभा का रस उड़ेलवा दिया था, जिसके परिणामस्वरूप उनके कानों में पगवान् महावीर के भव में कीलें ठुकी।

अनुकारी भट्टा की क्रोधविष से व्याप्त होने के कारण बरबर वेश में अनेक मरुट सहते पड़े। क्रोधवश कुरह-उकुरह मुनियों ने संयम जीवन से हाथ धोए। क्रोध के कारण तपस्वी मुनि पाण्डाल बह्लाए।

रवे हुए क्रोध को पुनः जयाना तो और भी भयंकर

बिन्ही दी व्यक्तियों में किसी कारणवश भगड़ा हो गया। क्रोध के कारण दोनों उत्तेजित हो गए। किन्तु शान्त एवं परोपकारी हितैषी सम्जन ने बीचबिबाव करके उम सद्गई को शान्त करा दी। परन्तु किसी क्रोधप्रिय एवं बलहृप्रिय व्यक्ति



बन्धुओ ! आप भी अपना मरी पाव समझिए । अगर आप क्रोधकरी विग को जाने ही नोकरे नहीं, उने बहरीने कोरे की मरग मसोने रहेंगे तो बाद रनिये एक न एक दिन क्रोध का विग भी आप के मारे जीवन में नैन जागुआ भोग बहु घामको मे दूयेगा । आपकी आत्मा को अध्यात्ममय पर आने नहीं बहने देगा । दुगमिग क्रोध-करी विगने कीटानु का पना मगने ही मुरंन उमे नदेहने की कोजिन कीरिए ।

### क्रोध की देहने और नापने की प्रक्रिया

क्रोधकरी विग जीवन मे है या नहीं ? है तो कितनी दिगी है ? उमके बाद नियमन का अध्यास कैसे करना चाहिए ? इस मसकय में कुछ विचार प्रस्तुत करता हूँ । योग के कीटानुओ को देहने की मरह क्रोध के विगाक कीटानुओं की बागीकी मे देहने के निर मूक्य अन्तर्निरीक्षण—आलोचन आवश्यक है ।

इमने माघ ही क्रोध कितनी दिगी का है ? क्रोधनिर्धरण के प्रति रवि है या नहीं ? इसके नाप-जीन के लिए कुछ प्रश्न प्रस्तुत किदे आते हैं, जिनके उत्तर करने आप ही 'हाँ' या 'ना' में आप दे लें ।

(१) आपको क्रोध आता है या नहीं ?

(२) तीव्र आता है या मन्द ?

(३) क्रोध मकारण आता है या अकारण ?

(४) यदि मकारण आता है तो कौन-सा कारण है ? — (अ) आपके मन के अनुभूत या आतानुसार अमुक ध्यक्ति ने कार्य नहीं किया इस कारण ? (आ) पढ़ने दिगी ने आपके प्रति कोई उरकार किया या इस कारण ? (इ) वर्तमान में आपको कोई धन, जन या किमी पदार्थ को रानि पढ़ेबाई, इस कारण ? या (ई) आपके अहं को थोट पढ़ेबी, इस कारण ? (उ) आपका अगमान कर दिया, इस कारण ? या (ऊ) और कोई कारण बना ? अथवा (फ) दुर्बलन से, रबार्थपूनि मे बाधा से, अनुचित व्यवहार से, प्रान्ति से या विचारभेद, अथवा दविभेद से क्रोध आया ?

(५) जो भी कारण क्रोध का बना, उसके निवारण के लिए आपने कोई उपाय किया या नहीं ?

(६) क्रोध आपको प्रतिदिन आता है या कभी-कभी पाच दम दिग मे ?

(७) एक दिन में एक बार आता है या अनेक बार ?

(८) क्रोध आने पर तत्काल ज्ञान हो जाता है या गौठ बाध कर लवे समय तक दिक्ता है ?

(९) बाद मे आपको क्रोध के लिए कभी पयवाताप होता है ? या कभी क्रोध-निग्नन न कर मबने के लिए कुछ प्रायश्चित लेने की ह्छा होती है ?

(१०) जब क्रोध आता है मब अपने भीमर ही गोमित रहना है, या गानी, मापीट या हाव पैर बनाने के रूप में बाहुर आ जाता है ?



और नम्रतापूर्वक हमने भी सत्यवर्तनों से निवेदन किया—“गुरुदेव ! जानते कि तूने  
का आज बर्षान किया, वह तुम्हारे मेरे जीवन में है। मैं क्षीय चोरी स्वभाव का हूँ।  
मैं अपने इस त्रोघ-रोग से आराम देखने हों उठा हूँ, उठ गया हूँ। बुरा, हमने  
कोई अवसर इमान बनाए, जिससे मैं त्रोघ-रोग से मुक्तता पा सकूँ। मैं जानता  
मत्स्य उधार मानूँगा।”

मत्स्य ने आश्चर्यजनक देने हुए कहा—“अम्मा ! बहकती मत्स्य। प्रदान करने पर  
कोई भी वस्तु अमम्य नहीं। यह तुम्हारे पूर्व संस्कारों का परिणाम है। छोटे-छोटे  
अम्मा से मेरे पुनराकार भी निर्मूल हों जाँगे।” यों बहकर मत्स्य ने उसे एक मत्स्य  
दिया और बताया—“जब त्रोघ का प्रसंग उत्पन्न हो, तब मत्स्य प्रदान करने हम  
मत्स्य को २१ बार बोलना तथा उस त्रोघ-रोग का निवारण हो छोड़कर बड़ी दूर चले  
जाना। यदि कुछ दिनों तक तो पड़ी हुई आदत तुम्हें बहुत रोगन करेगी। पानु  
करने हूँ सफल पर डटे रहना। भविष्य में मत्स्य न हो, हमने मत्स्य प्रसू से प्रार्थना  
करना। मत्स्य आम्मा को सत्यपूर्वक जानूँ रमना। इसी प्रकार का ध्यान और कर  
करना, जिससे क्षमा, नम्रता, प्रेम, मैत्री, प्रमोद, बरता, दया, श्रीश्री के स्वभाव,  
आदि का गहराई से चिन्तन करना। हम मत्स्य पर भी सुबह-शाम एकाग्रतापूर्वक चिन्तन-  
मत्स्य के माथ करना। जिससे रमणलाल को मत्स्य बना मत्स्य गया, तीन मीर भी  
निधि मिल गई। उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। यदि पूर्व संस्कारक कुछ दिनों  
एक तो वह यदा-कदा मुड़ हो जाना; लेकिन वह कोरी स्नेह थी, मत्स्य में प्रदा का तरंग  
बिन्दु था, तत्काल में पेटा नहीं था, इसलिए कुछ ही दिनों में उसका त्रोघ-रोग  
शान्त होना दिखाई दिया। रमणलाल की जागृति से छोटे-छोटे त्रोघ विकार पताचमान  
होने लगे।

एक दिन रमणलाल के त्रोघ विषय की बगोटी हुई। एक दिन घर में लिचड़ी  
बनी थी, उसमें माँ व पत्नी दोनों ने नमक डाल दिया था। नमक दो बार पड़ जाने  
के कारण लिचड़ी खारी हो गई थी। वही लिचड़ी रमणलाल की धाती में परोगी गई  
थी। लिचड़ी का कौर मुह में डालते ही खारी लगी। पहले ऐसा प्रसंग आना तो वह  
लिचड़ी को दासी माँ या पत्नी के माथे पर दे मारता था, पर अब रमणलाल बदल  
गया था। पूर्व संस्कारों ने और तो खूब सगाया, पर आज बागडोर रमणलाल के हाथ  
में थी। वह ‘आश्चर्य गुरुदेव’ मत्स्य में बोल कर ज़रूरी कामों के बहाने सीधा दूकान पर  
पहुँचा। उसके बाद जब माँ ने लिचड़ी खाई तो उन्हें भी खारी लगी। वह से पूछने  
पर पता लगा कि उसने भी नमक डाल दिया था। अब माँ की समझ में आया कि  
रमण भोजन की धाती पर से बगो उठकर चला गया था। माँ तुरन्त दूकान पर  
पहुँची। पुत्र को आग्रहपूर्वक मनाने लगी—“देठा, जल्दी घर चलो। हमें पता नहीं था,  
तुम से नमक दो बार डाल दिया था। हमारी भून के लिए हमें क्षमा करो। तुम जो  
बहोते, वह मैं बना दूँगी।” माँ के वास्तव्यमय वचन सुनकर रमणलाल के घर के  
दर खुले। आज उसे वास्तव्यमय वचन सुनकर रमणलाल के घर के





आयेगा। क्रोधी के प्रति क्रोध करने में क्रोधी का बल बढ़ जाता है। जैसे शत्रु हमारा बल हरण कर लेता है, वैसे, क्रोधरुपी शत्रु भी हमारा बल क्षीण कर देता है। माघ बलि ने कहा है—

‘क्रोधी हि शत्रुः प्रथमं नराणाम् ।’

‘क्रोध मनुष्यों का सबसे पहला शत्रु है ।’

क्रोधी के प्रति क्रोध करके अपना बल मत घटाओ

कई लोग क्रोधी के क्रोध को देखकर सोचने लगते हैं कि मैं क्या इसमें कम हूँ, या कमजोर हूँ ? इसकी गाली सहन कर लूँ यह मुझ से कैसे हो सकता है ? परन्तु ऐसा करने में क्रोधी का बल बढ़ता है, क्रोधी के प्रति क्रोध करने या गाली देने वाले का बल घटता है ।

एक बार श्रीकृष्ण, बलदेव, सत्यक और दासक चारों वन में घूमते-घूमते बहुत दूर निकल गये। वहाँ उन्हें रात हो गयी। घर वापस लौटने का मौका नहीं था। उन्होंने निश्चय किया—आज रात को किसी पेड़ के नीचे बितायेंगे, पर हममें से एक व्यक्ति बारी-बारी से जागता रहे, ताकि कोई उपद्रव हो तो शान्त किया जा सके। सर्वप्रथम दासक की बारी थी। इसलिये वह अपने पहरे पर बैठ गया, बाकी तीनों सो गये। कुछ ही देर बाद एक पिशाच आया, वह बोला—“मुझे बड़ी जोर की भूख लगी है, इसलिए इन तीनों को खा लेने दे।” दासक—“यह कैसे हो सकता है। मैं इनकी रक्षा के लिए संनात हूँ। मेरे रहते तुम इन्हें नहीं खा सकते। इस पर पिशाच दासक से भिड़ गया। दोनों में रसाकस्मी होने लगी। ज्यों-ज्यों दासक का रोप बढ़ता जाता, त्यों-त्यों पिशाच का बल बढ़ता जाता। अतः दासक पिशाच को परास्त न कर सका। इतने में तो उसका समय पूरा हो गया। अब बारी थी—सत्यक की। वह जब पहरे पर बैठा, तब फिर वह पिशाच आया और उसी तरह अपनी बात दोहरा कर सत्यक से लड़ने लगा। सत्यक ने भी ज्यों-ज्यों पिशाच के प्रति क्रोध प्रगट किया, त्यों-त्यों उसका बल कम हो गया, पिशाच का बल बढ़ गया। अब सत्यक के सो जाने के बाद बलदेव की बारी थी। बलदेव भी अत्यन्त रोप में आकर पिशाच से भिड़ गया, परन्तु दासक की तरह वह भी थोड़ी देर में हारफने लगे, धक्कर धूर हो गये। वह भी पिशाच को परास्त न कर सके, क्योंकि गुस्सा करने से पिशाच का बल बढ़ जाता। अब श्रीकृष्णजी का नम्बर था। वे पहले तो शान्त सहे हो गये। पिशाच का जोर धरा रोप ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, श्रीकृष्ण धाम्नि से उभे बहने रहे—शाबाश ! तू बढ़ा वीर है। तेरी माना घन्य है, जिसने ऐसा वीरपुत्र पैदा किया।” इस गाने रहते से पिशाच का बल घटता गया। आखिर वह इतना निर्वैन हो गया हार कर चला गया। सबसे तीनों व्यक्ति उठे तो उनके माथे धीरे देखकर ब पूछा तो तीनों बोले—रात में हम एक पिशाच से लड़े थे। इसी कारण मृत से न

















उपर बनाये हुए दोरो और दुर्गुणों को मिटाने और बानावरण में मुक्त, शान्ति आनन्द और प्रेम को फैलाने में सफल हो सकता है और कोई उपाय इतना आसानी से नहीं हो सकता । इसीलिए अहिमा इन भूतल पर अमृत की सरिता है । अहिमा की अमृत-सरिता में दुःख की लगातार व्यक्ति अपने आपको तो अमर बनाना ही है, वह जिस किसी का सम्पर्क करता है, उसके जीवन में भी अमृत भर देता है ।

जिस प्रकार सरिता की छाया स्वयं जीवन रहती है और जो उसके पास जाता है, उसमें सम्पर्क स्थापित करता है, उसके भी वह जीवन का प्रदान करती है, इसी प्रकार अमृत की सरिता अहिमा में अवसाहन करने वाला व्यक्ति अपनी आत्मा में जीवनता, शान्ति और आनन्द का अनुभव करता ही है, साथ ही उसके सम्पर्क में जो भी जाता है, वह भी आनन्दित हो उठता है । धीरे-धीरे अपने से वैर न मानने वालों की भी सम्पर्क होना शुरू हो जाता है, किन्तु उनकी भी दृष्टि अहिमा के अमृत से होकर हृदय वाले महान् आत्माओं के पास पहुँचकर बदल जाती है । वे उनके प्रभाव से सज्जन बन जाते हैं ।

लयागत बुद्ध के सम्पर्क में आकर अंगुलिमात हाकू से भिक्षु बन गया, यह अहिमायुत का प्रभाव ही तो था । काल्पीति हाकू महात्मा नारद के सम्पर्क से ऋषि काल्पीति बन गया, यह अमृतकार अहिमायुत का ही तो था । मगवान महावीर के सम्पर्क में चण्डबौद्धिक विषय विषय बनना छोड़कर अमृत का शोध बन गया, इसका यह अहिमा का दिव्य प्रभाव नहीं था ?

दूर की बात जाने दीजिए—गाँधी युग की बात तो आपमें से बहुत से जानते ही होंगे । गुजरात के मूक लोचसेवक रविशंकर महाराज को कौन नहीं जानता ? उनके हृदय में आतङ्ककारी हाकुओं के प्रति अगाध प्रेमायुत भरा था । अतः भयकर आतङ्ककारी हाकुओं से मिलने का निश्चय किया । हाकुओं के मिलने की जहाँ संभावना थी वहाँ वे अंधेरीरात में चमक दिये । चारों ओर छाया हुआ घना अन्धकार बानावरण को भयानक बना रहा था । दोनों ओर सबी टेरियो के बीच बहता छोटा-सा सरिता । किसी महात्मा व्यक्ति की भयकर आवाज सुनकर अजनबी धानी रुक गया । चारों ओर से बन्दूकधारी हाकुओं ने उसे घेर दिया । जब उन्होंने बन्दूकतानी तो अजनबी धानी रविशंकरजी का मुक्त हास्य फूट पड़ा । बोले—“मैं भी तो तुम्हारी बिरादरी का हाकू हूँ । दम्पुओं ने बन्दूक नीची कर ली और पूछा—“यहाँ क्यों आये हो ?” “आप

















प्रेम आदि का अमृत बरपा होगा, वहाँ क्रोध, अभिमान, लोभ, मोह, काट, मगर आदि बीटाणु नहीं होंगे। दया और वाग्वन्ध का, मैत्री और आत्मीयता का उम हृदय में स्थायी निवास हो जाएगा। परन्तु त्रिग हृदय में काम, क्रोध आदि की गन्दगी होगी, वहाँ अमृत नहीं रहेगा, वह हृदय विनाश हो जाएगा। उम हृदय में प्रेम भी होगा तो वहाँ स्वार्थ और वासना की दुर्गन्ध होगी। छलकट्ट एवं मायाचार की बन्धु वहाँ पैनी हुई होगी। बाहर से उस व्यक्ति का व्यवहार मधुर, प्यार-भरा प्रीति होगा, परन्तु अन्दर से कटु और काट पूर्ण होगा। परन्तु हृदय में दया, प्रेम, स्नेह, करुणा आदि अमृत भावनाएँ निवासित होगी तो वे सब अमृत बनेंगी और अमृत का नाम करेंगी। त्रिगके भी मन्त्रण में वह व्यक्ति आएगा, उसको अपनी दया आदि के अमृत से प्रभावित कर देगा। उसके हृदय में स्थित दयामृत का पोषा बढ़ता-बढ़ता एक दिन विशाल वृक्ष के रूप में पल्पविन-पुष्पित हो जाएगा। इसीलिए कहा है—“दुनिवा के त्रिने भी धर्म हैं, त्रिन्हें मानव अपनाता है, वे सभी दयामृत की गरिमा के महानट पर पल्पविन, पुष्पित एवं अकुरित होकर बढते हैं। अगर दयामयी अमृत सरिता मूल जाए तो वे सभी धर्म, मूल नष्ट जायेंगे। वे कब तक हरे परे रह सकते हैं ?

एक पाश्चात्य विद्वान् ने ठीक ही कहा है—

“A mind full of piety and knowledge is always rich; it is a bank, that never fails; it yields a perpetual dividend of happiness.”

“दया और ज्ञान से भरा हुआ हृदय हमेशा धन से परिपूर्ण होता है। ऐसा हृदय एक बैंक है, जो कभी फेल नहीं होता। यह खुशी का एक स्थायी साधन देना रहता है।”

कमलपुर के हरिवाहन राजा का पुत्र भीमकुमार जैसा शरीर से सुकुमान था, वैसा वह हृदय में भी कोमल था। बुद्धिमानर मन्त्री के पुत्र मति-सागर के साथ उसकी गाढ़ी दोस्ती थी। एक दिन शुभ समाचार प्राप्त हुए कि नगर के बाहर उद्यान में देवचन्द्राचार्य पधारे हैं। राजा हर्षित हो कर समस्त राजपरिवार, राजकुमार, मन्त्री एवं प्रतिष्ठित नागरिकों सहित आचार्यश्री के चन्दनार्थ गए। सभी यथायोग्य स्थान पर बैठ गए, तब आचार्यश्री ने उपस्थित जनसमूह को धर्मोपदेश दिया। त्रिसे सुनकर राजा ने मध्यस्त्व सहित श्रावक के बारह वन अंगीकार किए। राजकुमार को भी गुरु देव के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। आचार्य श्री ने भीम को योग्य समझ कर कहा—“राजकुमार ! तुम्हें आज से मन-वचन-काया से दया की सम्पूर्ण रूप से आराधना करनी है। क्योंकि दया दूरवरे सत्य आदि सभी धर्मों की माता है। अहिंसा-धन का विशेषात्मक रूप दया है, अहिंसाधन सभी धर्मों की गुरुता के लिए बाडरूप

१ 'दयानदी-महातीरे सबें धर्मास्तुणांकुराः।

तस्या शोधमुपेताया, क्षिप्रप्रवृत्ति से चिरम् ?”



शिवकी दाहिनी चुवा पर भीम पड़कर आया था। भीम एक ओर छिप कर बैठ गया। बापानिक ने बाँए हाथ में एक पुरण को पकड़ रखा था, दाँए हाथ में उसके तपवार थी। वह उस पुरण में बह रहा था—अपने इष्ट देव का स्मरण कर ले, अब मैं तेरा मानक बाट कर देवी की पूजा करूँगा।” उस पुरण ने कहा—“मेरे तो परम उपकारी बीनराग देव का सर्वप्रथम शरण हो, तदनन्तर परोपकारी दयावान धर्मिष्ठ मित्र भीमकुमार का शरण हो।” वो कहते ही भीमकुमार ने एकदम प्रगट होकर दुष्ट बापानिक को सपकाया—अरे पापिष्ठ ! टहुर जा तुझे मज्जा चलाना है। तू मेरे मित्र की हत्या करना चाहता है। मेरे रहते तू उगका बाल भी बाँका नहीं कर सका। मैं वही भीमकुमार हूँ।” बापानिक सहसा मन्त्रिपुत्र की छोड़ कर भीम की ओर दौड़ा। भीम ने अपने दोनों पैर पकड़ कर नीचे पटक दिया और उगकी छाती पर पैर रस कर पीटने लगा।” यह देव देवी (कालिका) आश्चर्य होकर कहने लगी—“भीम ! इसे मर मार। यह मेरा मेवक है। 108 मनुष्यों के ममक कमल पड़ा कर यह मेरी पूजा करेगा। तब मैं प्रसन्न होकर इसे घरदान दूँगी। अभी तो तेरा पराक्रम देव कर तुझ पर सुष्ट हूँ। वर माँग।” भीम बोला—माना ! अगर तू भुव पर सुष्ट है तो आज मे मर-वचन-काया से जीवहिमा का त्याग कर। सभी धर्मों का मूल दया है। दया से सर्व मनोवाञ्छित फल मिलते हैं। हिमा में अनन्तकाल तक संसार में परिश्रमण करना पड़ता है। अतः हिमा का त्याग करो, दयामूल का सेवन करो।” यह सुन कर देवी ने कहा—अच्छा, आज मे मैं समस्त जीवों को अपने समान मान कर दया करूँगी। किसी को न मारूँगी। यों वह कर देवी अदृश्य हो गई।

मन्त्रिपुत्र ने अपनी आप बीती कह सुनाई और कुमार का अत्यन्त उपकार माना। बापानिक ने भी कहा—“कालिका देवी को आपने दया धर्म जगीकार कराया, इससे मैं प्रसन्न हूँ और आपको मैं अपना धर्म गुरु मानता हूँ। मैं आपका सेवक हूँ। आप तो अनेक गुणों से समृद्ध हैं।”

प्रातः काल एक देवाधिष्ठित हाथी दोनों को अपने पर बिठाकर एक उजड़े हुए नगर में ले गया। कुमार नगर के मुख्य द्वार पर मन्त्रिपुत्र को बिठाकर स्वयं नगर की गतिविधि देखने लगा। इनके में एक सिंह को अपने मुँह में एक पुरण को पकड़कर ले जाते देखा तो कुमार ने उसे छोड़ देने को कहा। यह भी कहा कि अगर आप कोई देव है तो कबलाहार आप के लिए उचित नहीं, तथापि मान लाने की इच्छा हो तो मेरा शरीर का भाग मैं दे देता हूँ, उसे खा लो।” सिंह बोला—आपका कहना ठीक है, पर हम मनुष्य ने पिछले जन्म में मुझे बहुत दुःख दिया है, अतः उसका बदला मैं इस पानी से धी-धी भवो तक लूँ, तो भी मेरा शोध शान्त नहीं होगा।” कुमार ने कहा—“अरे भद्र ! यह तो बेकारा दोष है, दोष पर इतना क्रोध ! फिर क्रोध करके बदला लेने से अनेक जन्म बिगड़ते हैं। अतः क्रोध करना छोड़ दे।” परन्तु सिंह नहीं माना। उसका कुमार पर झपटने लगा, तब कुमार भी अपनी तपवार उसके मस्तक पर



गुरुदेव ने भीमासा बनने की प्रार्थना की। गुरुदेव ने भी माया जानकर उड़ी भीमासा रिया। बाबुसांग से राजा ने अपने समस्त गांव में अमांगितह बरबाबर जीव हिंसा न करने की घोषणा कराई। प्रतिदिन गुरुदेव के व्याख्यान सुनने में भीमासा की सवार से शिरांगि हों गई। बाबुसांग पूर्ण होने के बाद भीमासा ने गुरुदेव से भागवती दीक्षा ले ली। अब वे गुरुदेव के साथ बिहार करने लगे। निगतिचार पाणि-पावन होने हुए एक दिन उन्हें वे वागमान प्राप्त हुआ। अनेक जीवों की प्रतिबंध देने हुए भीमनुति जगत् मुक्ति पट्टे।

यह है दयामृत का बरबाबर। दयामृत अहिंसापुत्र का ही वस्तु है। इसके प्रभाव में भीमनुमार अनेक संकटों में पार हो गए। दयामाया के प्रभाव से उन्हें अनेक बीमों का आसोबास और सहयोग मिला। यद्यपि उनकी दयामुक्ति की अनेक बार बर्माटी तो हुई, परन्तु वे अन्त तक अपने अहिंसापत्र पर बटे रहे।

### अमृतयोग की साधना

अहिंसा अमृत है, इसका अनुभव तो आसानी से ही जाना है, परन्तु इस अमृतयोग की अगर उचित साधना की जाए तो उसके प्रभाव में मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी आदि प्राणी ही नहीं, प्रकृति जगत् के बग-बग में परिवर्तन हो जाता है। ऐसा अहिंसा-पुत्र का साधक जहाँ बही भी रहता है, वहाँ उससे सांप्रिष्य में रहनेवाले प्राणी से बना पारस्परिक वैर-विरोध भूल हो जाते हैं, किन्तु आसपास की पुष्पी वनराजि कुम्भित, हरी-भरी और समृद्ध हो जाती है, वहाँ का जल, वायु और वातावरण सुगन्धित हो जाता है, उसकी साधना में भारी प्रकृति सहायक हो जाती है। इसीलिए भीमनुति ने कहा है—

“अमर्य कि अहिंसा।”

अमृत क्या है, अहिंसा।



महंकार या अमियात इमीन्कार का एक मन्त्र है, जिससे हमें सावधान रहना है। हम चाहे बिना ही उच्च मायका हो गए हों, चाहे ११वें मुनिय्यात तक पहुँच गए हों, फिर भी सावधान से नहीं रहना है।

अभिमानही अनु त्रय आता है तो साथ में जोष, मास, सोप, मोह, दम्भ, डोह, स्वार्थ, द्वेष, ईर्ष्या, मग्नर, यद, हिंसा, अविनय, असत्य आदि दण्डन के साथ आता है। जहाँ अभिमान आता है, वहाँ अह के चोट लगने पर जोष तो आ ही जाता है। जहाँ दुःख के प्रति जोष आया, वहाँ द्वेष भी आ पहुँचता है। अपने अभिमान की पूज मिटाने के लिए मनुष्य सोम को आमन्त्रण दे ही देता है। साथ ही अपनी कुटिमता, अपनी वचना या मेरे-तेरे के भाव को छिपाने के लिए माया भी आ प्रयत्नही है। इनीति (आचारोग) साम्प्रकार कहते हैं—

'जे भागहंसी से भायाईंसी'

ओ मानदगी होता है, वह भागदगी भी होता है।

मर्यादा—जहाँ अभिमान महाराज का वदार्पण होता है, वहाँ मायारानी लो  
का ही जाती है।

इसी प्रकार जहाँ अभिमान आता है, वहाँ ज्ञान और विवेक के नेत्र बन्द हो जाते हैं, इसलिए मोह महाराज तो उसकी सेना के नायक बन कर आ ही जाते हैं।  
 कार्यालय भूख (५/४) में स्पष्ट कहा है—

उत्तपनाजे व मरे महाभोहे पधुगई

अभिमान करता हुआ मनुष्य महामोह से प्रमुग्ध (विवेकमूढ़) हो जाता है ।

पाश्चात्य विचारक Dillon (डिल्लन) ने भी यही बात कही है—

'Pride, the most dangerous of all faults, proceeds from want of sense, or want of thought.'

अभिमान, जो कि तमाम अपराधों में सारनाक अपराध है, ज्ञान की कमी का विचार की कमी से आगे बढ़ता है।

इसी प्रकार जहाँ अहंकार आ जाता है, वहाँ मनुष्य अपनी बात चाहे मूढ़ी या अहितकर भी हो उसे रखने के लिए दम्भ और द्रोह भी करता है। जहाँ अभिमान आता है, वहाँ मनुष्य 'स्व', मैं और मेरे से बन्द हो जाता है, अपना माना हुआ धर्म-सम्प्रदाय, जाति, कुल, बल, तप, धन, परिवार, स्वार्थ, विचार, मत आदि का अप्रह, कभी-कभी अभिमान के कारण कदाग्रह का रूप ले लेते हैं। परम्पराओं और मान्यताओं का पूर्वाग्रह भी अभिमान के कारण होता है।

"Pride is a vice, which pride itself inclines every man to find in others, and to overlook in himself."





इसी प्रकार अहंकार की शारीरिक प्रधानता भी बतल गयी है। अहंकार इतना मजबूत बल रहता है कि वह जीवात्मा के साथ लिपटा हुआ है। जैसे कि एक विचारक Tupper (टप्पर) ने कहा है—

"Deep is the sea and deep is the hell, but deeper thaneth deeper  
It is coiled, as a poisonous worm about the foundation of the  
soul

मनुष्य महान होता है और नरक भी महान, किन्तु अहंकार आत्मा की तरह बहुत ही अधिक महान होता है। यह आत्मा की आभासिताओं के चारों ओर जहरीले मांस की तरह कुच्छन्नी घाते चैठा रहता है। मनुष्यात्मा अभिमान की इतनी बड़ी सेना है, इससे तो आप सब परित्याग हो गए होंगे। इतनी बड़ी सेना के साथ जो अभिमान मनुष्य अपने जीवन पर आक्रमण करता है, क्या उसमें माध्याम रहना, उसमें खतरा रहना आपका कर्तव्य नहीं है?

अभिमान इसलिए मनु है कि यह हमारी आत्मा का सबसे ज्यादा अहित करता है। सुभाषितरत्न भाण्डाकार ने अभिमान को सर्वाधिक दोष वर्णित बनाते हुए कहा है—

हीनाधिक्ये च विदधात्मविवेकमात्रं  
धर्मं विनाशयति, संक्षिप्तं च पापम् ।  
दौर्भाग्यमानयति, कार्यमपाकरोति  
किं किं न दोषमपवा कुदनेऽभिमान ।  
मोर्ति निरूपयति, विनीतमपाकरोति  
कोति शशाङ्कधवला मलिनोक्तरोति ।  
मान्यान् न मानयति मानवशेन हीनः  
प्राप्नोति मानमपहन्ति महानुभावः ॥

अर्थात्—जो अपने में गुण आदि किसी बात में हीन या अधिक हो, उनके प्रति अभिमान अविवेक करता है, वह धर्म का नाश और पाप का संचय करता है, दौर्भाग्य लाता है, कार्य बिगाड़ देता है, कहीं तक चले, अभिमान कौन-कौन-सा दोष नहीं करता है? यह नीति न्याय को दूर धकेल देता है, जिनकी पुरुष की भी निरास देता है, मनुष्य की कन्दमा-सी उज्ज्वल कीर्ति को मलिन कर देता है, गामान्य व्यक्तियों को अभिमान वश सम्मान नहीं देता, और अपने में वह हीन प्राणी है, ऐसा समझकर अभिमानी महानुभाव उसका अपमान कर देता है।

इसके सिवाय अहंकार मनु पर विद्रव्य इसलिए विद्रव्य पाना आवश्यक है कि वह आत्मा को नरक या तिर्यक गति में धकेल देता है, यह आत्म-गुणों का सर्व विनाशक है। जैसे कि विष्णु धर्मोत्तर में कहा गया है—







है। वे लोगो का हिन-अहिन नहीं मानते। पन्थानार बानाबाजारी और मुत्तारा-मोरी का मार्ग आमताने है। फलतः शीघ्र घनघन बनने लगे हैं परन्तु हम प्रकार अनीति से उपाजित घन प्राप्त। शुभार या विनाशिता में सर्व हो जाना है।

एक व्यापारी को किसी प्रकार से बहुत बड़ा लाभ हुआ। मनमाना दाना आ गया। फिर क्या था, वह व्यक्ति कामगारों के अनियन्त्रण का शिकार हो गया। आबारागर्दी की हाथ में पकड़ा गया। जब उसका उद्वेग शान्त हुआ, तब उसने सज्जन होकर कहा—“अप्यधिर गमति ने मुझे उद्विग्न कर दिया था। मैं इसराने लगा। दूसरो पर अपनी शक्तता और शोभ ब्रमाने के लिए मैंने वे अनुचित अवाध-नीय कार्य किये। अब पछता रहा हूँ।”

निष्कर्ष यह है कि अहंकार ने प्रेरित होकर शीघ्रगति में अन्याय-अनीति द्वारा उपाजित घन—एक प्रकार का पाप है। इसकी गति तीव्र होने से पाप की पराकाष्ठा आने भी विलम्ब नहीं लगता। पापों की पराकाष्ठा तब पहुँचने की अवधि में मने ही कोई अहंकारी अपने को चतुर समझता रहे, किन्तु पाप की पराकाष्ठा पर पहुँचने ही मारा समाज उसका सच्चा स्वरूप जान जाता है और हृदय में उसका माघ छोड़ देता है। पापजन्य पन में उठ पाना भी उसके लिए दुष्कर हो जाता है।

### आत्म-विकास में बाधक

अहंकार शत्रु आत्म-विकास में बहुत ही बाधक है। अहंभाव मनुष्य को हृदय का सकीर्ण और स्वार्थी बना देता है। अज्ञानी आत्मा को केवल अपने शरीर तक ही सीमित मानता है, जो कि अहंकार शत्रु के हृदय में प्रवेश होने पर होता है। इससे समस्त प्राणियों को आत्मवल मानने की प्रवृत्ति रक जाती है। क्योंकि अहंकारी तो अन्य प्राणियों को अपने से भिन्न मानता है।

समाज का अस्तित्व पारिवारिक सहयोग, प्रेम, मैत्रीभाव आदि पर टिका हुआ है। यदि इन भावों का सर्वथा अभाव हो जाये, तो मनुष्य अकेला अलग-अलग रह जाये। अहंकारशत्रु जब मनुष्य के हृदय में प्रविष्ट हो जाता है, तब वह दूसरो का सहयोगी नहीं बनता, वह सब कुछ अपने लिए ही करना चाहेगा। वह सब कुछ अपने और अपनी के लिए सग्रह करेगा। केवल अपनी ही सुख-सुविधा पर ध्यान देगा। ऐसी स्थिति में मैत्री, सहयोग या प्रेम भाव अहंकारी के जीवन में न आने से वह अपना आत्मविस्तार भी न कर सकेगा। आज समाज में दूसरे के जीवनयापन, उन्नति और प्रगति में सहायक या सहयोगी न होने से ही दुःख, क्लेश और मघर्ष दिखाई देते हैं।

### समाज सहयोग में बाधक

मनुष्य के यह सोचने का हेतु भी अहंकार ही है कि मैंने अपना विकास स्वयं किया है, समाज में कोई सहयोग नहीं लिया। क्योंकि समाज के सहयोग



एक गन्यासी से किसी भक्त ने कहा—“मैं ३२ वर्ष में बन्दगी कर रहा हूँ, परन्तु मुझे ज्ञान नहीं होता।” गन्यासी बोले—“यों तो ३०० वर्ष में भी नहीं होगा।” भक्त ने पूछा—“तब फिर क्या उपाय करें?” गन्यासी ने कहा—“शृंगार छोड़कर, मिर मुँहावर परिवित्त सोर्गों में रोटी माँग कर मा।” भक्त—“यह कैसे सम्भव हो सकता है?”

गन्यासी बोले—“भाई, मी बातों की एक वान है—अभिमान छोड़ें बिना नाम उपाय कर मो, तुम्हें मच्चा ज्ञान नहीं मिलेगा।”

इसलिए अभिमान मनुष्य को गद्गान प्राप्ति होने में बाधक है।

### विनय का नाशक

अभिमान विनय का तो बट्टर दुश्मन है। जहाँ अभिमान होगा, वहाँ विनय टिक नहीं सकेगा। अभिमान के समाप्त होने पर ही मनुष्य के मन में विनय का प्रारम्भ होगा।

कुसारा शहर में एक ऐसा उद्गु और अविनयी व्यक्ति था, जो हर किसी की निन्दा एवं बुराई किया करता था। यहाँ तक कि वहाँ के गहृदय एवं लोकप्रिय प्रजावत्सल राजकुमार की भी निन्दा करने से नहीं चूकता था। उनकी दृष्टि दोष-दोषन की थी, जिसमें अच्छाई में भी उसे बुराई नजर आती। राजकुमार को उसकी करतूतों का सेवक द्वारा सब कुछ पता लग जाता था। एक दिन राजकुमार ने उसके अहंकार को उतारने के लिए एक तरकीब सोची। अपने सेवक के साथ उपहारस्वरूप कुछ चीजें भेजी। सेवक उसके यहाँ पहुँचा और बोला—“भाई! तुम राजकुमार की बहुत याद करते हो, उन्होंने प्रसन्न होकर एक बोरी आटा, एक बैली साबुन और घोड़ी-सी शक्कर उपहारस्वरूप भेजी है।”

उसकी प्रसन्नता का क्या टिकाना! गर्व से फूला न समाया। उसने मन ही मन सोचा कि ‘ये वस्तुएँ राजकुमार ने उसे प्रसन्न करने के लिए भेजी हैं, ताकि वह उसकी बुराई न करे।’ वह दोड़ा-दोड़ा पादरी के पास गया। बोला—“देखा, अब राजकुमार भी मेरी सद्भावनाएँ प्राप्त करने के इच्छुक हैं, तभी तो उन्होंने ये सब चीजें मेरे लिए भेजी हैं।”

पादरी ने कहा—“तुम मूर्ख हो। अहंकार के कारण तुम्हारी बुद्धि पर पर्दा पड़ा है। उसे हटाने के लिए, चतुर राजकुमार ने तुम्हें इनाम से सारी बातें समझाने का प्रयत्न किया है। जरा विवेक बुद्धि से काम लो। आटा तुम्हारा खासी पेट भरने के लिए है, साबुन तुम्हारे दुग्ध युक्त गन्दे शरीर को स्वच्छ करने के लिए है और शक्कर तुम्हारी बड़बी ज़बान को मीठी बनाने के लिए है।”

बहना न होगा, उस अभिमानी के अभिमान का मारा नशा सबमुच, अहंकार से अविनय पैदा होगा है, जो अर्द्धमुक्त होते ही दूर हो





जो अपने आपको ही अधिक मानता है; दूसरा कोई भी मुझ से बड़कर नहीं है, इस प्रकार के अभिमान में यत् अनेक जन्मों तक नीचकुल में पैदा होता है।

### कुलमद के रूप में

कुल का अभिमान भी मनुष्य के लिए मनु का काम करता है। केवल उच्च कहलाने वाले कुल में पैदा होने में ही जीवन उत्तम नहीं होता, जीवन की उत्पत्ति तो अपने शुद्ध पुरुषार्थ पर निर्भर है। कई लोग उच्चकुल में पैदा होकर भी चोरी, अभिचार, डकैती, मायाहार, गुरा-पान, हत्या आदि करते हैं, क्या कुल उन्हें तार देगा या कर्मों के बन्धन से छुड़ा देगा? अतः कुल का अभिमान करना व्यर्थ है। कुलाभिमान नीचकुल में ले जाता है? भगवान्-ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती का पुत्र मरीचि भगवान् ऋषभदेव के पाग मुनि धर्म में दीक्षित हुआ। स्वामिों में अगशास्त्रों का अध्ययन किया। परन्तु धीमेकाल के तार में अत्यन्त पीड़ित होकर मन में विचार करने लगा—इस कठोर साधुचर्या का पालन होना मुझ से बटित है, परन्तु वीर्या छोड़ कर धर जाता भी अच्छा नहीं, अतः एक नया त्रिदण्डी परिव्राजक पथ निकाला। उसने यह कल्पना की—“साधु तो मन ध्यान काया रूप त्रिदण्ड में विरत हैं, मैं पूर्णतया नहीं, अतः त्रिदण्ड के प्रतीक चिह्न रखूंगा। साधु तो द्रव्य-भाव दोनों से मुण्डित हैं, वेगसोच करते हैं, मैं ऐसा नहीं कर सकना, अतः मैं क्षुरमुण्डन कराऊंगा, शिखा रखूंगा। साधु तो मूढम हिमा में भी संवंधा विरत हैं, मैं पूर्णतया विरत नहीं हूँ, इसलिए स्थूल हिमा में विरत रहूंगा। साधु तो भान्त होने से शीतल रहते हैं, इसलिए वे चन्दनादि का लेप नहीं करते परन्तु मैं इतना भान्त नहीं, इसलिए चन्दनादि का लेप करूंगा। साधु शरीर मोह रहित होते हैं इसलिए उन्हें छत्र तथा उपानह की जरूरत नहीं, परन्तु मैं अभी मोह का संवंधा त्याग नहीं कर सका, इसलिए मैं छत्र तथा उपानह रखूंगा। साधु संवंधा बपाय रहित हैं, मैं वैसा नहीं हूँ, अतः बापायवस्त्र रखूंगा। साधु तो स्नान से विरत हैं, परन्तु मैं परिमित जल से स्नान, पान करूंगा।” यो अपने मन में कल्पित परिव्राजकपथ अपना लिया। पर विचरण भगवान्-ऋषभदेव के माय-माय ही करते थे। उनका नया वेप देव कर लोग धर्म के विषय में गूढ़ने, तब वह भगवान्-ऋषभदेव के धमण धर्म का ही उपदेश देना, और अनेक राजपुत्रों को प्रतिबोध देकर भगवान्-ऋषभदेव के शिष्य बनाना।

एक दिन भगवान् ऋषभदेव अयोध्या पधारे। मरीचि भी साथ ही था। भरतचक्रो भगवान् को वन्दन करने आए, सहसा उन्होंने भगवान् से विनयपूर्वक पूछा—“मयवन् ! आपकी धर्म परिपद् में ऐसा कोई जीव है, जो इस भरत क्षेत्र में इस चौबीसी में तीर्थंकर होगा?” प्रभु ने परमाया—“तुम्हारा पुत्र मरीचि है, जो इस चौबीसी में अन्तिम चौबीसवाँ तीर्थंकर होगा तथा वह महाविदेह क्षेत्र में मुरारनगरी में प्रियमित्र नाम का चक्रवर्ती भी होगा एवं इसी भरत क्षेत्र में त्रिपुष्ट नामक प्रथम वामुदेव भी होगा।” यह सुन कर भरत चक्रवर्ती हर्ष-मान्य होकर मरीचि के पास



परन्तु बाद रनिग, किसी भी वन का अभिमान और उमगा दुर्दययोग उनके एव  
गमाज तथा रात्र के निग, बहुत ही अनयं बर है।

### रूपमद के रूप में

रूप एव सौन्दर्य भी जानवान है, शक्ति है। वृद्धावस्था और वृद्धि, इन दोनों के कारण किसी का रूप वा अभिमान टिक नहीं सकता। संसार में एक से एक बदलर रूपवान है। कोई यह गारण्टी नहीं दे सकता कि मेरा रूप बिररपायी रहेगा। मधुरा नगरी की ननंकी वामवदत्ता को अपने रूप पर बड़ा गर्व था। उसके रूप से आश्रित होकर हजारों युवक उसके इगारे पर नाचने को तैयार रहने थे। लेकिन शीघ्र ही उसके शरीर में एक ऐसा रोग हो गया, जिससे सारा शरीर सट गया। राजा ने उसे नगर के बाहर फिक्वा दिया। अब उस ननंकी के पास कोई फटकता न था। जिस रूप पर उसे गर्व था, वह गनकर चूर-चूर हो गया। सारा रूप बीमारी के कारण नष्ट हो गया। वामवदत्ता को बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

हस्तिनापुर के सनत्कुमार चक्रवर्ती को अपने सौन्दर्य का बड़ा अभिमान था। देवतांग में उसके सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर दो देवता ब्राह्मण के वेष में उसे देखने आये। चक्रवर्ती उस समय स्नानागार में सुगन्धित तैलमर्दन करा रहे थे, आभूषण रहित थे, फिर भी उनका रूप दर्शनीय था। चक्रवर्ती द्वारा विप्रों से आगमन का प्रयोजन पूछे जाने पर उन्होंने बताया—“हम आपके अलीकिक रूप का वर्णन सुनकर देखने के लिए आये थे। परन्तु हमने जैसा सुना था, उसमें सबाया देला।” यह सुनकर सनत्कुमार अपने रूप की प्रशंसा से रूप गत्रिम होकर कहने लगे—‘भूदेवो! आपने अभी तक मेरा रूप देखा ही नहीं है? रूप देखना हो तो अब स्नान करके वस्त्राभूषण पहन कर राजमभा के मिहामन पर बैठें, तब देखना।’ विप्रों ने कहा—“अच्छा ऐसा ही करेंगे।” राजा भी शटपट स्नान करके वस्त्राभूषण पहन कर मिहामन पर बैठे और उन दोनों ब्राह्मणों को बुलाया। ब्राह्मणों ने चक्रवर्ती का रूप देखकर विप्र स्वर में कहा—“मनुष्य के रूप, जीवन, लावण्य, शणभर तो बहुत अच्छे दिखाई देने हैं, पर रोद है, शणभर में वे एकदम कुच्छ हो जाते हैं। यह सुनकर चक्रवर्ती ने कहा—“विप्रो! मेरा रूप देखकर आप रोद क्यों प्रकट करते हैं?” उन्होंने कहा—“राजन्! आप जानते ही हैं, देवता शय्या में पंदा होते हैं, तब से लेकर उनका आयुष्य छह महीने बाकी रहे, वहीं तक उनका रूप और जीवन उयो का र्यों रहना है, परन्तु मनुष्य के ती जीवन-अवस्था तक रूप तेज और जीवन बढ़ने हैं, उनके बाद उयो-उयो उम्र डकती जानी है, र्यों र्यों दनका ह्माग होता जाता है। अगर आपके रूप में तो हमें विशेष आश्चर्यजनक बाग दिखाई दी है। आपका रूप अभी ही हमने देखा और अभी ही उनका ह्माग प्रारम्भ होने लगा है।” सनत्कुमार ने पूछा—“आपको यह कैसे पता लगा?” उन्होंने कहा—हम देव हैं। आपके रूपगर्व करने के माघ ही आपके शरीर में ७ महारोग उत्पन्न हो गए हैं—(१) बूट, (२) चोच, (३) उवर, (४)



यह है कि मनुष्य लाभ और अनाध में समभाव में रहे, न हट्ट हो न दट्ट, न लाभ के समय पुत्र और न अनाध के समय गड़के ।

लाभ के समय गर्व में फूलने बापों का चिन्ता युग हाथ होता है, यह एक प्राचीन शास्त्रीय कथा पर में सुनिम्—

परशुराम जगदग्नि तापस का पुत्र था । उसने एक बार एक रुग्ण विद्याधर की सेवा की, इतने प्रगल्भ होकर विद्याधर ने परशुराम को परशु विद्या दी । परशुराम ने उस परशु विद्या को गिड़ किया और जगत् में परशुराम नाम में विख्यात हुआ ।

परशुराम की धाना रेणुका एकबार अपने सहनोई के यहाँ बहने से मिलने गयी थी । वहाँ सहनोई के फूलवाने पर रेणुका उसके साथ व्यवहार में प्रवृत्त हो गई । यत्ना लगा तो कुछ हीबेर अवधि रेणुका को घर लाया । परशुराम ने जब यह बात जानी तो अपने परशु से अतन्त्रवीर्य को मार डाला । उसकी गद्दी पर ब्रत वीर्य बैठा, उसने अपने विरुद्धता जगदग्नि को मार डाला । यह ज्ञान कर परशुराम अत्यन्त कोपमयान हुआ और जाग्रन्मयमान परशु से ब्रतवीर्य के साथ मश्राम करके उसका वही नाम तमाम बर डाला । ब्रतवीर्य की जगह स्वयं गद्दी पर बैठा । ब्रतवीर्य की पत्नी रानी भागकर एक तापस के आश्रम में पहुँची, वही भय-विह्वल होकर उसने पुत्र प्रसव किया । उसका नाम रखा शुभ्रम् । वही वह तापस आश्रम में ही बड़ा होने लगा ।

परशु विद्या की विद्धि का लाभ परशुराम के लिए भयकर गर्व का कारण बना । वह लाभमद में उत्पन्न होकर जहाँ-जहाँ क्षत्रिय को देखना, उसे परशु से मौत के घाट उतार देता । उसकी परशु क्षत्रिय के पाम जाते ही प्रज्वलित हो उठनी । एक वह तापस-आश्रम के निकट से गुजर रहा था, तभी उसकी परशु प्रज्वलित हो उठी । उसने तापस-आश्रम में जाकर पूछा—“यहाँ कोई क्षत्रिय है ?” तापसों ने कहा—“यहाँ तो हम क्षत्रिय हैं । मारना हो तो मार डालो ।” उसकी शका दूर हुई । यो परशुराम ने क्रमशः सात बार पृथ्वी को नि क्षत्रिय (क्षत्रियरहित) कर दी । क्षत्रियों की हत्या करके उनकी दाड़ों से पाल भर लिया ।

एक दिन परशुराम ने एक नैमित्तिक से पूछा—“मेरी मृत्यु कब होने होगी ?” नैमित्तिक बोला—“जो तेरे तिहासन पर बैठेगा, और जिसके देखते ही धान में रसी हुई दाड़ें खीर बन जाएगी तथा उस खीर को जो खायेगा, वही तुझे मारने वाला होगा ।” यह सुनकर परशुराम ने उसे पहचानने के लिए एक दानशाला स्थापित की, वही एक गिद्धागत रत्नवाया और उसके आगे वह दाड़ों का धान रखा ।

इधर वैताप्य पर्वत निवासी मेघनाद विद्याधर ने एक नैमित्तिक में पूछा कि मेरी पुत्री का बर कौन होगा ?” उसने बताया कि शुभ्रम् बचकनी होगा । तब में वह शुभ्रम् बचकनी की सेवा में रहने लगा । जब शुभ्रम् जवान हुआ तो माता ने पूछा—“क्या दुनिया इतनी ही है ?” माता ने उसके जन्म से लेकर अब तक का ..



है कि वास्तव वैभव के अहंकार की प्रतिस्पर्धा की हर गमम चिन्ता बनी रहती है, आध्यात्मिक वैभव में कोई चिन्ता नहीं, प्रतिस्पर्धा की। उसका अहंकार होता ही नहीं।

गवमुच, ऐश्वर्यमद मे मनुष्य को दूसरे मे, या अपने बराबरी जाने मे प्रतिस्पर्धा की चिन्ता रहती है? भौतिक ऐश्वर्य की प्रतिस्पर्धा मे जैसे दणार्णमद्र को दण्ड के आगे हार खानी पड़ी, वैसे ही दूसरो को खानी पड़ सकती है।

### श्रुतमद के रूप में

श्रुतमद भी मनुष्य का भयंकर शत्रु है। यह जिसके जीवन में आ जाता है, वह ज्ञान, साध्याध्ययन, विज्ञान, ध्यान साधना आदि में आगे नहीं बढ़ पाता। श्रुत का अर्थ यहाँ सम्पत्ति, शास्त्रज्ञान, अध्यात्मविज्ञान, ध्यान-साधना आदि है। मनुष्य चाहे जितना पढ़-लिख जाय, चाहे वह अनेक शास्त्रों का अध्ययन करने, गमस्त विद्याओं और दर्शनों में पारंगत हो जाए कि अगर ज्ञान के साथ अहंकार खी शत्रु पुन गया है, विनय सुप्त हो गया है, तो वह ज्ञान न तो अपने लिए कल्याणकारी होता है न दूसरो के लिए। वह ज्ञान केवल अहंकार की भूय मिटाने के लिए होता है। ज्ञान के मद का अनुभव भर्तृहरि को बहुत ही कटु हुआ है—

“यदा किञ्चित्तोऽहं गम इव भवान्धः समभवम्  
तदा सर्वतोऽस्मीत्यभवदवसितं मम मनः ।  
यदा किञ्चित् किञ्चित् बृधजन सकाशादवगतम्  
तदा भूर्लोऽस्मीति ह्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥”

—जब मैं थोड़ा-थोड़ा जानता था, तब हाथी की तरह भवान्ध बन गया था, तब मेरा मन ‘मैं सर्वज्ञ हूँ’ इस अभिमान में लिप्त हो गया था। जब मैंने विद्वानों की सगति में कुछ कुछ जाना, तब मुझे भान हुआ कि मैं तो भूर्ल हूँ, और इस प्रकार मेरा ज्ञान का मद उबर की तरह उतर गया।

उपाध्याय दशोबिजय जी उस युग के पुरण्डर विद्वानों में माने जाते थे। वे अनेक विषयों में पण्डित व बुशाप्रबुद्धि थे, प्रखरवक्ता भी थे। काशी में पण्डितों की सभा में भारी विषय प्राप्त करने में उन्हें ‘व्यायविहारद’ की पदवी मिली थी। मस्तिष्क में घण्टों धाराप्रवाह भाषण देने थे। परन्तु जब वे काशी से दिल्ली गये तब ज्ञान के अभिमान वश बार इज्जत रखने थे। एक दिन मुर घूमपास से व्याख्यान हो रहा था। व्याख्यान के समय भी व्यापनाजी पर बार हाड़ियाँ रनी गई थी, जिसका मतलब था—‘बारो दिशाओं में अपनी विद्वत्ता की गुपग पताका फहर रही है।’ एक बूढ़ी आधिका ने माहम करके पूछा—“महाराजधी ! क्या मोनम स्वाधी एवं मुधमस्वामी भी आप जैसे ही विद्वान थे ! उपाध्यायधी ने कहा “मैं तो उनकी बरणरज भी नहीं हूँ। वे वनघर महाप्रभु हैं, मैं उनका कुछ सेवक हूँ।”





## अप्रमाद : हितैषी मित्र

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

आज मैं आपके सामने ऐसे जीवन की चर्चा करना चाहता हूँ, जो हम सबके साधनामय जीवन का हितैषी मित्र है। साधनामय जीवन का क्षण-क्षण का वह प्रहरी है, हमारे साधनामय जीवन में मगन उसका हितैषी मित्र की तरह साथ रहना आवश्यक है। जिसे सामान्य या विशिष्ट किसी भी प्रकार की साधना करते समय एक मिनट के लिए भी भूला नहीं जा सकता, जो हमारे जीवन का साथी है, मुहूर्त है, हितैषी मित्र है। पद-पद पर हमें मार्गनिग (चेतावनी) देता है, खतरे की घंटी हमारे मनमस्तिष्क में बजा कर हमें सावधान करता है, वह है अप्रमाद। महर्षि गौतम ने इसे ही अटारहवें जीवन सूत्र के रूप में प्रस्तुत किया है। वह सूत्र इस प्रकार है—

“किं ह्यप्रमादमात्रं”

प्रश्न—हिन—हितैषी मित्र कौन है ?

उत्तर—अप्रमाद।

अप्रमाद हमारे जीवन का हितैषी, सदा हित चाहने वाला, कल्याणकारी एवं जागृत रखने वाला मित्र है।

अप्रमाद एक सन्निभ

समय में मित्र तो बहुत में होते हैं, परन्तु अधिकांश मित्र स्वार्थी, अस्थायी और दुर्व्यसनों में फँसानेवाले होते हैं, वे मित्र की अपेक्षा कुमित्र या शत्रु का काम ज्यादा करते हैं। परन्तु सच्चा मित्र स्वार्थी नहीं होता, वह दुःख और विपत्ति में सदा साथ रहता है, वह दुर्व्यसनों में नहीं धकेलता, बल्कि दुर्व्यसनों में फँसते हुए मित्र की निश्चलता है, दुर्व्यसन छुटा कर सम्मार्ग पर सगाता है, वह मित्र को पदे-पदे सावधान करता है। भगुंहरि योगी ने नीतिशतक में सन्निभ का लक्षण इस प्रकार दिया है—

पापाग्निवारयति धोत्रयने हिनाय  
गुह्यं निगूहति, गुमान् प्रकटीकरो-  
आपद्गतं च न चहति, ब्रह्मणि च  
सन्निभ लक्षणमिदं प्रवर्तति स



## अप्रमाद का विरोधी : प्रमादविरोधी

इसके अनिश्चित अप्रमाद का स्वरूप क्या है? यह जानने के लिए हमें यह जानना होगा कि अप्रमाद का अर्थ क्या है?

वास्तव में अप्रमाद प्रमाद के विरोधका अर्थ में है, परन्तु यह विरोध का पदार्थों का विरोध नहीं है, जैसे कोई बड़े वि अप्रमाद पानी को प्रमाद न हो, जो पत्थर, पानी, मिट्टी, देड़ आदि अप्रमाद है। ऐसा कहना और समझना गलत होगा। यहाँ विरोध तद्भिन्न और तत्समझ अर्थ का सूचक—वस्तुतः है, प्रमाद नहीं। इसलिए प्रमाद में भिन्न—प्रमाद के सहज कोई भावनात्मक पदार्थ—अप्रमाद कहना है। अर्थात्—प्रमाद का विरोधी भाव अप्रमाद है। अतः अप्रमाद को समझने के लिए पहले प्रमाद और उसके विभिन्न रूपों का समझना आवश्यक है।

### प्रमाद : आत्म-विस्मृति

प्रमाद का एक अर्थ है—विस्मृति या भूल। मनुष्य घर की सामान्य वस्तु वही भूल जाता है, वह तो क्षण ही सञ्चयी है, क्योंकि वह वस्तु न मिले तो वह दूसरी सरीसृक से आता है; परन्तु आत्मा को—अपने स्वरूप को साधक भूल जाय, वह तो बहुत बड़ी अशान्ति भूल है। ऐसी भूल में तो साधना आगे चम ही नहीं सकती। जिनकी भी साधनाएँ हैं, वे सब भी सब उद-वेगन के—आत्मा-अनात्मा के या जीव-अजीव के भेदविज्ञान पर आधारित हैं। अगर मनुष्य आत्मा का या अनात्मा स्वरूप ही भूल जाय—और अजीव में ही रमण करने लगे, यानी अपनी आत्मा को, आत्मा के निजी गुणों तथा स्वभाव को तब में रखकर बार-बार जोछादि विभाषों को ही अपने मानने लगे या उनमें ही प्रसन्न हो जाए अथवा सांगारिक जड़ और चेतन दोनों प्रकार के पर-पदार्थों को अपना स्वरूप मानने लगे तो उसकी साधना में प्रगति नहीं हो सकेगी। इसलिए आत्म-विस्मृति सबसे बड़ा प्रमाद है अथवा आत्मा भूल या गलती से किसी पर जोष या अभिमान करे, किसी वस्तु पर मोह या आसक्ति करे, अथवा किसी के साथ छल-कपट करे तो वहाँ साधक की गलती या भूल समझी जाती है, यह भी प्रमाद है। कई बार मनुष्य अज्ञान या मोह या अहंकार के बन्धीभूत होकर अपने आपकी भूलकर गलती से कुछ का कुछ समझने लगता है। जैसे कोई साधक अपने आपकी धनिक, भारतीय, अमुक जाति का, अमुक प्रान्त का- अमुक भाषा वाला अथवा विद्वान या अविद्वान, जानी या अजानी, दुबला या मोटा समझने लगे तो वास्तव में साधना की दृष्टि से यह प्रमाद है।

मनुष्य अपने आपको कैसे भूल जाता है? इसके लिए एक व्यावहारिक उदाहरण—

मारवाड़ में गेताजी नाम का एक बनिया था। नदी के किनारे उसने सरजू के की बाड़ी लगाई। बाड़ी के पाम ही वेड के नीचे एक छोड़की बना ली, जिसमें वह पढ़ा-बैठा था। एक दिन गेताजी सरजू के लेकर बाजार में बेचने गए। वापस



पर, उनमें से दो में है।" नाई बोला—“मैं भी दूधो घामने बही जा रहा हूँ।” बालो, हम साथ ही चले।” बाड़ी पर पहुँचकर उन्होंने सब जगह बूँद निया पर गेनाजी न मिले। मुनिया जी ने कहा—आज मैं उनके घर पर गया था, तो उनकी पत्नी ने कहा—“उनका तो ७-८ दिन से कोई पता नहीं। न जाओ कहाँ चले गए?” इस पर नाई नवाब ने बोला—“अभी तीन-चार दिन पहले तो मैंने उन्हें दूधो पेड़ की छाया में साते देखा था। भरनीद में मैं उनकी दाढ़ी-मूँछें साफ कर गया था।” यह सुनते ही पेड़ पर बैठे गेनाजी जोर से बोले—“अरे! दाढ़ी-मूँछें तू मूँद गया था? तो गेनाजी यह बैठा।” यों कह कर वे पेड़ से नीचे उतरे और नाई तथा मुनिया जी से मिले।

बन्धुओ! आज अधिकांश लोग अपने आत्म-स्वरूप को गेनाजी की तरह घून जाने हैं। मोह में डूब जाना प्रमादवश भी आत्म-विस्मृति रूप प्रमाद है।

प्रमाद असावधानी अविवेक आदि अर्थों में

प्रमाद का दूसरा अर्थ है—असावधानी, गणनत, अजागृति, अविवेक, मूर्च्छा या रोग में रहना आदि। इसी प्रकार बोलने, सोचने या किसी प्रवृत्ति को करते समय ध्यान न रखना। जब आदमी असावधानी या लापरवाही करता है तो वह कितना गुप्तमान कर बैठता अपनी आत्मा का? इस विषय में पाश्चात्य विचारक Feltham (फैल्थम) से विचार कितने मननीय है?—

“Negligence is the rust of the soul, that corrodes through all her best resolves”

असावधानी या लापरवाही आत्मा पर लगा हुआ जंग है, जो उसको तमाम सर्वोत्कृष्ट मन्त्र के मारफत क्षीण कर देती है।

जरा-या असावधानी रूप प्रमाद किन तरह सर्वनाश कर देता है? इस सम्बन्ध में सैकड़ों वर्ष पहले की ब्रह्मदेश की एक ऐतिहासिक घटना सुनिए—

ब्रह्मदेश का एक राजा अपने महल के तीसरे मजिल की अटारी पर बैठकर गृह का मरबन पी रहा था। अचानक घोड़ी-सी बूँदें राजा की असावधानी से नीचे गिर पड़ीं। उन्हें घाटने के लिए कुछ मक्खियाँ उन पर बैठीं। मक्खियों पर छिपकली ने मारट मारी। छिपकली को देखते ही एक बिल्ली उस पर टूट पड़ी। बिल्ली के गिरने के लिए नील-चार कुत्ते आ गये। कुत्तों में अन्दर ही अन्दर सझाई होने लगी। उनका पक्ष लेने दो दरबारी पटंग आ गए। दोनों पक्षों के बीच जमकर सझाई हुई। एक पक्ष ने मेना बुलाई और दूसरे पक्ष की ओर से सशस्त्र आगारिक मैदान में आ दटे। सारे शहर में बसवा हो गया। महल की आग लगा दी गई। इस प्रकार राजा की असावधानी (प्रमाद) ने गिरी हुई गृह की कुछ बूँदों ने राज्य का सर्वनाश कर दिया। मानव ने मानव की जरा सी भूल भी सर्वशर परिणाम









इसी तरह योग के पाठ में भी बताया है—

‘योगहर्म्य सम्मं अणुशान्ताय’

योग का सम्यक्प्रकार में पानन न किया हो। इसीप्रकार योग में प्रमादन एवं प्रतिवेशन भी सम्यक्प्रकार में न किया हो तो वह भी दोष (अति-चार) है।

आज देखेंगे, भगवान् महावीर ने माधकों को खाने, पीने, सोने, जागने, भिक्षा, प्रतिवेशन, प्रमादन, स्वाध्याय, ध्यान, वायंग्यमं, तप, शरन, आदि के साथ विवेक को जोड़ा है। जितनी भी क्रियाएँ बम्बो, चाहे वे छोटी हों, या बड़ी हों, परन्तु पूरे होश (विवेक) के साथ करो। होश या विवेक के बिना की गई बड़ी से बड़ी क्रिया भी प्रमाद युक्त है और कर्मबन्ध जनक है। परन्तु विवेक पूर्वक की गई छोटी से छोटी क्रिया भी अप्रमाद युक्त है वह कर्मबन्ध में मुक्त कर सकती है, कम से कम पाप कर्मों के बन्ध से तो माधक को मुक्त कर ही सकती है।

प्रत्येक क्रिया अविवेक से करना : प्रमाद

आज हम देख रहे हैं कि अधिज्ञान लोग वास्तव्य या भूना, मैत्री या शत्रुता, शोध या क्षमा, विनय या अहंकार आदि जो कुछ भी करते हैं, प्रायः सोये हुए—अविवेक से करते हैं।

अप्रमाद का संदेश है, सोना है तो भी विवेक से और जागना है तो भी विवेक से। इसका मतलब है—विवेक अप्रमाद का अंग है। उसकी पहरेदारी प्रत्येक क्रिया पर रखी जाए तो फिर अपने आप मनुष्य गलत दंग से जी नहीं सकेगा। विवेक पूर्वक जो साधक सोएगा, वह सोचेगा कि मुझे कितनी देर सोना है, कहाँ सोना है? कैसे सोना है? क्यों सोना है? कब सोना है? किस प्रकार के बिछौने पर सोना है? शरीर को शयन की कितनी जरूरत है? शयन काल में किन-किन दोषों या विकारों से बचना है? ऐसा अप्रमादी व्यक्ति सोता हुआ भी जागृत रहता है। इसीलिए आचाराराम ने कहा है—

‘भुक्ताऽभुजिणो भुजिणो सदा जागरंति’

अभुजि ही सुप्त रहने है, मुजि तो सोने हुए भी सदा जागृत रहने है। भगवद्-गीता में भी साधारण मासारिक प्राणी और योगी की पृथक्-पृथक् जीवन दशा का वर्णन करते हुए कहा है—

या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा परयतो मुनेः ॥

समस्त प्राणियों के लिए जो अंधेरी रात है, उसमें सबकी पुरुष जागृत रहता है और जिस चोर रात में सामारिक प्राणि जागते हैं, वह दृष्टा मुनि के लिए अंधेरी रात है।



कई व्यक्ति किसी आवश्यक कार्य को आगे पर टालने रहते हैं। आज-कल, परमो करने-करने बरगो बीन जाने है, वह कार्य फिर ऐसा पटाई में पड़ जाता है कि होना ही नहीं, एक बार एक काम में टालमटोल की आदत पड़ जाती है, तो फिर वह हर काम में टालमटोल करना है। यो एक दिन त्रिदशी पूरी हो जाती है और जीवन के मुनहरे अवसर चले जाते हैं, अन्त में व्यक्ति हाम मनता रह जाता है। यह प्रमाद इनका भयंकर है कि अन्त में व्यक्ति को मित्राव निराशा और दुःख के और कुछ पप्ने नहीं पड़ना।

एक बुढ़िया के नाम मर्दी में ओढ़ने को कुछ न था। सोचने लगी—'कपड़ा और कई पड़ी है, कम मुबह उठकर गुदड़ी बना लूंगी।' मुबह हुआ तो उमने सोचा—'अभी क्या जन्दी है, काम को बना लूंगी। काम आई, अंग्रेज होने लगा, मोचा—अब अघेरे में तो कुछ बनेगा नहीं, अब तो कम ही बनाऊंगी।' रात हुई, बुढ़िया को सुव जाड़ा लगा। मोचा—मुबह उठूंगी और जरूर गुदड़ी बना लूंगी। किन्तु मुबह हुआ, नाम हुई, रात पड़ी, एक के बाद एक दिन बीतने लगे, पर बुढ़िया की गुदड़ी नहीं बनी। यों करने-करते मर्दी की मौसम निकल गई। सोचने लगी—'अब गुदड़ी की क्या जरूरत है? अब तो गर्मी की मौसम आई। अब तो अगली सर्दी की मौसम में बनाऊंगी। इस तरह करने-करने चार सोत ऋतु आई और चली गई, लेकिन बुढ़िया की गुदड़ी नहीं बनी, मो नहीं बनी।' उमकी उम्र भी यों मनसूवे करने-करते खत्म हो गई। इसी प्रकार आगे पर टालने वाले साधक मनोरथ करते रह जाते हैं, उम्र डल जाती है, बुढ़ापा घेर लेता है, कई रोग आकर डेरा जमा लेते हैं, फिर सारे ही अंग शिथिल हो जाते हैं, कुछ करने-धरने लायक नहीं रहते। इस तरह प्रमाद करने का नतीजा यह होना है कि व्यक्ति बिना ही धर्म साधना किये खाली हाथ चला जाता है। बार्नाइस के शब्दों में—

"आलस्य मे ह्यायो निराशा है।"

"In idleness there is Perpetual despair

प्रमाद निष्क्रियतापूर्वक का कालपापन

बहुतसे लोग निष्क्रियतापूर्वक अपना समय बिताते रहते हैं। निठले और निरामे रहने की आदत व्यावहारिक जीवन में जैसे सराव है, वैसे ही आध्यात्मिक जीवन के लिए भी बुरी है। जो व्यक्ति आध्यात्मिक साधना-ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य को आराधना करने का उत्तम अवसर मिलने पर भी उमने कुछ लाभ नहीं उठाया और निष्क्रिय बना रहता है, उम अन्त में परवास्ताप के मित्राव और कुछ नहीं मिलना।

पाश्चात्य विचारक टायरन एडवर्ड्स (Tyron Edwards) के शब्दों में—

"Indolence is the dry rot of even a good mind and a good Character....It is the waste of what might be a happy and useful life."



दिनभर एक मिनट भी बिश्राम करने का अवसर नहीं मिला। गाँधीजी के साथ महादेव भाई और बाबा बालेसकर भी थे। तीनों काफी रात गये अपने स्थान पर सोते। पकान के भारे उनके शरीर बुरी तरह निधित्व हो चुके थे। आते ही तीनों चारपाइयों पर पड़ गए और निद्राधीन हो गए।

चार बजे नींद टूटी। गाँधीजी और उनके साथियों का नियम था कि वह मार्गशास्त्र सोने से पूर्व और प्रातःकाल जगने ही प्रार्थना किया करते थे। गाँधीजी ने प्रातःकालीन प्रार्थना के लिए एकत्रित हुए काका बालेसकर से पूछा—“शाम की प्रार्थना का क्या हुआ?” काका ने उत्तर दिया—“बापूजी! मैं तो चकावट के भारे आते ही सो गया, प्रार्थना करना बिलकुल भूल गया। महादेव भाई ने भी इसी आगम्य की बात कही और कहा कि बीच में नींद टूटी, तब मैंने चारपाई पर मन ही मन प्रार्थना कर ली और प्रभु से क्षमा माँग कर सो गया। मगर गाँधीजी को इस प्रमाद का दुःख बहुत गहरा था। वे सोते, आज मेरा मन बहुत ही अस्वस्थ है, मैं कल शाम की प्रार्थना क्यों नहीं कर सका? क्या सोना इतना आवश्यक था कि भगवान का स्मरण तक न किया जाता?” जब काका ने बापूजी से कहा—“बापू! आप तो कहते हैं—भगवान के नाम से उनका काम बड़ा है। तब उनका काम करते हुए हम सो गए, हममें गुरा क्या हो गया?”

गाँधीजी ने कहा—“दुःख तो इस बात का है कि मैं कहीं आनस्य और प्रमाद से नाम और काम दोनों में भूल न करने लग जाऊँ।”

बगुम्रों! निद्रा के साथ भी प्रमाद न आ जाए, इस बात का विवेक प्रत्येक साधक को होना चाहिए।

हमारे शास्त्रों में द्रव्य निद्रा की अपेक्षा भावनिद्रा को बहुत ही भयंकर माना गया है। भावनिद्रा एक प्रकार की अज्ञागुनि है, जिसे मैंने आत्म-विस्मृति कहा है, वह एक प्रकार की भावनिद्रा ही है। मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अभिमान आदि के बन्धन में पड़ कर भावनिद्रा में सो जाता है। उसमें भयंकर अनिष्ट हो जाता है। आत्मा का अमूल्य धन ये चौर भावनिद्राधीन मनुष्य की गफलत का साम लटकार चुरा ले जाते हैं।

इसीलिए भगवान महाश्वर ने कहा है—

“मुलेषु घावी पडिबुद्धजोषी,  
न सोतमे पडिए आमुपले।”

आनुश्रुत पण्डित पुरुष को मोह निद्रा में सोये हुए प्राणियों के बीच में रह कर भी सदा जागरूक रहना चाहिए। प्रमादावरण पर उसे कभी विश्रान्त न करना चाहिए।

**प्रमाद के मुख्य कारण**

प्रायः यह होता है कि प्रमाद जब एक प्रकार का भाव है, और वह अन्तर से ही पहले पैदा होता है, तब बाहर से उसका विविध रूप में प्रयोग होता है, जिनका



## अप्रमाद के संदेश

अप्रमाद का मुख्य मन्त्रेण भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी को सत्य करके समस्त साधकों को दिया है—

‘समय गोचम । मा प्रमादए’

हे गौतम ! समयमात्र का भी प्रमाद मत कर ।

प्रमाद मृत्यु है और अप्रमाद ही अमरत्व है । जहाँ मृत्यु का-सा नाटक जीवन में होता है, वहाँ सदैव भय रहता है, मगर जहाँ अप्रमाद है, वहाँ मृत्यु का कोई भय नहीं है, अप्रमादी मनुष्य मृत्यु आती है तो भी हँसते-हँसते उसे वरण करता है । यह मृत्यु से भय नहीं खाता, वरन् मृत्यु को अपना रागा मानता है ।

अप्रमाद का सन्देश यह है कि मनुष्य ! तुम्हें बहुमूल्य एवं छोटा-सा जीवन मिला है, इसे प्रमाद में भोकर नष्ट मत करो अप्रमत्त साधना के द्वारा इसे मार्थक करो । इनका एक क्षण भी व्यर्थ की बातों में मत खोओ । शरीर और मन को निष्क्रिय और आरामनलव न बनाओ, किन्तु इनके द्वारा जीवन की उत्तम साधना अप्रमादी होकर करो ।

भाग्यवाद के भरोसे रह कर आलस्य और अकर्मण्य मत बनो, क्योंकि ऐसा करना महाप्रमाद है, किन्तु ज्ञान-दगंन-चारित्र्य की मोक्षसाधना के लिए अविरत पुण्यार्थ करो । अकर्मण्य होकर बैठना महापाप है, अकर्मण्य और आलसी व्यक्ति समीगुणी है, वह अपने जीवन को प्रमाद में खोकर नरक का पथिक बनता है । जीवन सत्पुरुषार्थ में ही निमग्न रहता है, प्रमाद से नहीं । इसलिए सत्पुरुषार्थ एवं शुभकर्तव्य करते रहो । मोक्षमार्ग की ओर—लक्ष्य की ओर चले चलो, बड़े चलो । जो चलते रहते हैं वे ही एक दिन लक्ष्य का बिनाश पा जाते हैं, जो आलसी एवं प्रमादी बन कर बैठे रहते हैं, वे नैकहो जन्मों में भी संसार समुद्र को पार नहीं कर सकते । इस लिए ‘कर्मण्येवाधिहारं श्रेया कतेषु कदाचन’ इस सिद्धान्त के अनुसार कर्तव्य, धर्मा-चरण में फलाकांक्षा एवं भाग्यवाद से दूर रह कर पुण्यार्थ करते जाओ । इसीलिए अप्रमाद का मन्त्र है—

‘उद्विष्टो नो प्रमादए’

जो कर्तव्यव्यव पर उठ खड़ा हुआ है, उसे फिर प्रमाद नहीं करना चाहिए । अप्रमाद को जीवन का मन्त्र साधो मान कर बनो । महर्षि गौतम ने इसीलिए स्पष्ट कहा है—

‘किं हि यमप्यभाओ’

हितैषी मित्र कौन है ? अप्रमाद ही है ।





बड़े सहरो में ठग लोग इसी प्रकार भोलेभाले लोगों को फँसाते हैं। एक बार एक कच्छीभाई बम्बई में एक मोहल्ले की छोटी-सी गली में से होकर जा रहा था। अचानक पीछे से एक आदमी आया और कुछ ही फासले पर एक सोने की डली पड़ी थी, उसे कच्छीभाई के देखते उठा कर भागने लगा। उसके पीछे एक दूसरा व्यक्ति आया, जिसने इस कच्छीभाई के कान में धीरे में कहा—“सेठ ! यह आदमी सोने की डली लेजा रहा है, अपन इससे खरीद लें। और बाजार में बेचकर बहुत मुनाफा कमायेंगे। आपके पास बितने रुपये हैं ? निकालिये झटपट। पीछे यह हाथ में नहीं आयेगा।” कच्छीसेठ ने अपनी जेब में चासीम घासे थे, वे निकाले। उस धूर्त ने कहा—“इतने से काम नहीं होगा। सोना कम से कम २०० रुपये का है। हम इसे आपके दामों में ले लेंगे और क्या है आपके पास ?” कच्छीभाई ने कहा—“मेरे पास और तो कुछ नहीं, एक घड़ी है।” उस धूर्त ने कहा—हाँ, हाँ, बस, अब काम बन जाएगा। मुझे क्या करना है। मैं आपको ही यह सोने की डली उससे दिलवा दूँगा।” बस, उस धूर्त ने दौड़कर सोने की डली वाले धूर्त को पकड़ा। उसे गिरफ्तार कराने आदि की झूठमूठ धमकी दी और वे ४० रुपये तथा लगभग ६० रुपये की हाथपड़ी देकर उसने सोने की डली ली और उस कच्छीभाई को दे दी।

कच्छीभाई बहुत प्युश होता हुआ जा रहा था। परन्तु मन में शका थी कि कहीं यह खोरी का माल हुआ और पुलिस को पता लग गया तो मुझे गिरफ्तार कर लिया जाएगा। इसी चिन्ता ही चिन्ता में वह मुख्य सड़क पर आ गया। और एक टैक्सी में बैठकर शिवाजी रोड पहुँच गया। वहाँ अपने एक सम्बन्धी से टैक्सी का किराया दिलावा दिया। उसने अपने सम्बन्धी को वह सोने की डली दिखाई और ४०) और एक घड़ी देकर खरीदने की बात कही। सम्बन्धी के मन में सोने की डली देखते ही शका हुई कि यह सोने का मुलम्मा बढ़ाया हुआ है। वह उस डली को लेकर पास में ही रहने वाले एक मुनार के पास गया। उसे दिखाकर पूछा—देखो तो, यह सोना बितने का है ?” मुनार ने उसे कसौटी पर कसा और तैज़ाब में उसका एक मिरा डाला तो तुरन्त पता लग गया कि यह सोना नहीं, पीतल पर सोने का मुलम्मा बढ़ा हुआ है। लगभग दस रुपये का होगा।” यह सुनते ही कच्छीभाई का हृदय बैठ गया। अच्छा, छोला खाया, आज तो ! सोने के बदले पीतल दे गया।”

मैं आपसे पूछता हूँ, कि उस कच्छीभाई ने ऐसा छोला क्यों खाया ? माया के खबर में आकर ही तो ? वह माया को यह खान न खा। उन धूर्तों की माया, और सोने की ओट में छिपाया हुआ पीतल उसकी आँतों में देस नहीं। उन बातों को यह छोला नहीं खाना चाहिए था।

माया : छोटे तिरके की तरह ख्याम

हेक्जमिटर के शब्दों में—

‘All that glitter are not gold.’

समाप्त खजरीनी थीने छोला नहीं हुआ बरत्ती। यह बात उसने दिमाग में



उग वस्तु या जीवन को निनष्ट कर देनी है, इमीलिए तो वह खतरनाक है, भया-  
वह है।

मनुष्य इनका चक्काबौंध हो जाता है कि उमे माया दिव्यनी नहीं, परन्तु वह  
माया ही होनी है, जो हमके जीवन को भयावह स्थिति में डाल देती है। इस दुनिया  
के बाजार में जगह-जगह माया का जाल बिछा हुआ है, माया मिश्रित पदार्थ मजे  
हूए हैं। प्रत्येक समझदार व्यक्ति को उसमें सम्भल-गम्भलकर चलना चाहिए। उतरा-  
ध्ययन सूत्र में इमीति साधक को सावधान किया गया है—

“खरे पयाइ परितकमाणो  
जं किजि पासं इह मग्नमाणो ॥”

साधक प्रत्येक कदम शक्ति होता हुआ फूँक-फूँक कर रमे। वह सामाजिक और  
भौतिक आकर्षण की जिस किसी चीज को देखे, उसे पाश (बन्धन) मानकर चले।

कवि अपनी मुरीनी तान में सावधान करता है—

दुनिया एक बाजार है, सौदे सब तैयार हैं,  
जो चाहे सो लीजिए, नहीं इन्कार है ॥ ध्रुव ॥  
दुनिया के बाजार में आके लाखों लोग ठगाए जा ॥ लाखों ॥  
ऐसी वस्तु सेना मित्र। तू वहाँ वहाँ मुल पाएजो ॥ दुनिया ॥

कवि का सचेत माया ने जाल से सावधान रहने के लिए है। क्योंकि माया  
विविध-विविध वेद बनाकर आती है, प्रत्येक क्षेत्र में इसका निरावाध प्रवेश है।  
प्रत्येक क्षेत्र के मांग इसे अपना कर अपना उरु लु सीधा करते हैं। परन्तु गौतम ऋषि  
कहते हैं—माया को अपनाने वाले लोग अपने ही जीवन को खतरे में डालते हैं।  
जब वे लोग माया के चक्कर में फँसकर दुःख पाते हैं तथा मानसिक क्लेश भी पाते  
हैं, तभी उन्हें माया की भयकरता का ख्याल आता है, परन्तु तब सिवाय पश्चात्ताप  
एवं वरम के और कुछ हो नहीं सकता। पश्चात्ताप विचारक सी साइमन्स (C Sim-  
mons) भी इसी बात की पुष्टि करते हैं—

“For the most part fraud in the end secures for its comp-  
anions repentance and shame.”

अधिकांश रूप में माया (छल-कपट) अन्त में अपने साथियों के रूप में पश्चा-  
त्ताप और सज्जा की गुरुराशि रखती है।

दुनिया को घोसाघड़ी कहा गया है। घोसा भी कितने घास्ते से दिया जाता  
है, उसका एक नमूना देखिये। एक बाजीगर ने एक सौते की इस डग में पाठ पढ़ाया  
कि उससे जो कुछ भी पूछा जाय, उसका उत्तर उसके पास एक ही था—‘भय का  
सदेह’ हमसे क्या सदेह है।’

एक दिन बाजीगर बीराहे के बीच में अपने सौते का परिचय देने हुए जोर-  
जोर से कह रहा था—‘बहु सुनराज जो वहाँ में बिजयमान है, देवस्यस्य है, बहु



माया भी धर्म का एक सङ्कलन है। उस विषय में जहाँ भी माया जनमानस में आज से कोई २० वर्ष पहले गाना-धोखा भी बी० एच० गेहानी से ही गई थी, जिस समय वे हैदराबाद सिन्ध के मजिस्ट्रेट थे। खान यह हुई कि मजिस्ट्रेट के समक्ष एक भाई का दूसरे भाई के विरुद्ध घोराघड़ी का मामला पेश था। अगला जज्जद्वारा के बारे में था। निर्णय का दिन आ गया था, मगर किसी कारणवश मजिस्ट्रेट पैसला नहीं मिल पाया था। मजिस्ट्रेट को अगली तारीख देनी ही थी। मगर सयोग ने उस दिन अभियुक्त बचतरी में म आ गया। उसके बच्चा उसका पुत्र हाज़िर हुआ। जो पिता की बीमारी का मजिस्ट्रेट लेकर यह प्रार्थना करने आया था कि अदालत अगली कोई तारीख दे दे। मजिस्ट्रेट ने तारीख तो दे दी, मगर यह बचाने का ग्राहम न कर गया कि वह मृत भी फैसला नहीं मिल पाया है। विस्मय की मार बरिष्ठा, अभियुक्त अदालत के बायें बावहार में भली-भाँति परिचित था। उसे भली-भाँति मान्य था कि बीमारी का मामला में अभियुक्त को बरी करना हो तो फैसला उसकी गैर हाज़री में भी सुनाया जा सकता है, किन्तु सत्ता देनी हो तो अभियुक्त उपस्थित होता चाहिए। अभियुक्त के पुत्र ने जब यह खबर दी कि मजिस्ट्रेट ने अगली तारीख दे दी है, तो उसने झट निष्कर्ष निकाल लिया कि अब मुझे खेत जाना ही पड़ेगा। वह मूर्च्छित हो गया और उसी सड़मे में चन बना। अगली तारीख की पेगी पर रोने हुए उसने पुत्र ने मजिस्ट्रेट को बताया कि फैसले की तारीख आगे पढ़ने की बात मुझसे हो पिताजी उसी सड़मे में चल बसे। मजिस्ट्रेट गेहानी के दिन को बहुत डेग पड़ेगी। उसकी फैसले के बारे में असावधानी से हुई जग भी माया से एक आदमी का देहान्त हो गया, यह मजिस्ट्रेट को खटकता रहता था। हालांकि मजिस्ट्रेट ने जो फैसला लिख रहा था, उसमें अभियुक्त को बरी कर रखा था। फैसला (उसके पुत्र को) सुनाते समय भी मजिस्ट्रेट की ओलों में ओसू थे। उसके बाद लगभग २५ वर्ष तक अपने द्वारा की गई यह सूझ माया काटे की तरह खटकती रही। बम्बई के जोष प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के पद पर रहने हुए मनु ७० में उन्होंने एक लिखी साप्ताहिक में अपने से जनमानस में बेबभूरा व्यक्ति की मौत का कारण बनने के बाद (माया) को प्रकाशित करके अपने दिल का बोझ हलका किया।

इसी तरह किसी भी घमावरण, घन, विषम आदि में माया शब्द की तरह खटकती है।

**माया : मित्रतानाशक**

माया इसलिए भी घयावह है कि यह मित्रता का समाप्त करने वाली है। दशवैकालिक मूल में स्पष्ट कहा है—

‘माया मित्राणि नासेह’

माया मित्रों की मित्रता का नाश कर देती है।

जहाँ मित्रों के बीच में माया होगी, वही भी मित्र के दिल में जगट आसन बना लेगा, वहाँ उनकी मित्रता टिक न सकेगी। प्रायः देखा गया है कि एक मित्र



बी श्रीमती और कान्तिमती नामक दो पुत्रियों के जन्म में जन्म लिया। जन्म विरोधवशात् पार करके सभी मोक्ष-अवस्था में आया।

एक दिन किसी कारुण्य अंगीकृत में गुरु आया। वहाँ उन्होंने अपनी मर्मांग मुन्दरी को देकर कहा—“तुम्हारी मर्मांग है?” उनका जवाब—“मर्मांग नहीं है। इस प्रकार मर्मांग मुन्दरी के नाम, रूप आदि के विषय में जानकर अपने पुत्र समुद्रदत्त के लिए दान में देने का मन मी। दान में देने की बात कही और दान में देने में दोनों का विवाह हो गया। एक दिन समुद्रदत्त अपने समुद्रदत्त पहुँचा। समुद्रदत्त वालों ने उनकी सब अवस्था कही। परन्तु जिन समय रामधर में वह शयन करने जा रहा था, उस समय मर्मांगमुन्दरी के माया जिन पूर्वजन्म में उदय में आया जिनके उनके मर्मांग की देवकी हुई और किसी पुत्र की छाया दिखाई दी। इस घर में मर्मांगमुन्दरी के पति को उसके प्रति गया हुई कि हो न हो, यह दुराचारिणी है। अब मर्मांग मुन्दरी जब राम में आई, तब वह उसमें जिन-जिन बोला नहीं, न बैठने की कहा। परन्तु यही मुक्ति में अभीष्ट पर रात बिनाई। गयेरा होने ही समुद्रदत्त वालों ने बिना पूछे ही उसने एक रामधर रामधर को वह कर समुद्रदत्त मोघा गयेरापुर पहुँच गया। फिर बीजपुर निवासी नन्दन में की वही पुत्री श्रीमती (पूर्व जन्म की पत्नी) के साथ पाणिग्रहण किया। उसके छोटे भाई ने उनकी छोटी बहन कान्तिमती (पूर्व जन्म की पत्नी) के साथ विवाह किया। मर्मांग मुन्दरी की जब इन बातों का पता लगा तो वह अत्यन्त दुःखी हुई। उसका समुद्रदत्त जाना-आना भी बन्द हो गया। अब मर्मांगमुन्दरी ने अपना बिल धर्म ध्यान की ओर मोड़ लिया। किसी भाव्यी जो के पास उसने भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली।

एक बार अपनी गुरुजी के साथ विचारण करती हुई साध्वी मर्मांगमुन्दरी साहेतपुर गई है। वहाँ पूर्वजन्म के दोनों भाइयों के वहाँ भिक्षा के लिए गयी तो देखा कि उनभान्न बिल वाली दोनों भीजाइयाँ तो धाविका बन गई हैं, दोनों भाई अभी धर्म पथ पर आये नहीं हैं।

एक दिन मार्ग मर्मांगमुन्दरी पारणा होने में वहाँ मोचरी गयी। उसी अवसर पर दूसरा मायावद्ध कर्म उदय में आया। बाल यो बनी कि श्रीमती अपने वासपर में बैठे हार विरो रही थी। साध्वी जो को आई देवधर वह हार छोड़कर बीच में ही उसी ओर उन्हें भिक्षा देने के लिए रमोई घर में गयी। वही बीच एक पिनामण ओर आया और उस हार को निगल गया। साध्वीजी सरी-सड़ी यह देख रही थी। अब श्रीमती एक बालों में आहार लेकर उन्हें देने आयी, उसे लेकर साध्वीजी वहाँ में खस दी। परन्तु श्रीमती ने जब हार विरो के लिए टटोला तो वहाँ मिला नहीं। आश्चर्यपूर्वक अपने परिवार वालों से सबने पूछा, उन्होंने कहा—“उन साध्वीजी के निवाय अभी और तो बीई आया नहीं था।” इस पर श्रीमती ने सबको डाँटा—“आप सब क्या कहती हो? क्या साध्वीजी अभी हार उठा सकती है।” परन्तु और कोई





